पल प्रतिपल

कहानी-संकलन

पल प्रतिपल

सम्पादक : देश निर्मोही



भूमिका नही

आज साहित्य की सभी विधाओ मे कहानी अधिक लोकप्रिय है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हिन्दी कहानी ने कई उतार-चढाव देखे हैं। अनेक आन्दोलनो के बीच से होकर गुजरी है। कभी नयी कहानी के रूप मे अपनी पहचान बनायी तो कभी 'अकहानी आन्दोलन' के रूप म 'नयी कहानी के अस्तित्व को नकारा। 'सचेतन कहानी', सहज कहानी', 'समान्तर कहानी' और फिर 'सक्रिय कहानी' के तेवर लिए हिन्दी कहानी की विकास यात्रा जारी रही।

आज जब हिन्दी कहानी की इस विकास यात्रा का नौवाँ दशक समाप्ति की ओर है तो कई स्वर एक साथ उभरकर सामने आये हैं। एक ओर अधिनायकवादी प्रवृत्तियाँ सक्रिय हैं तो दूसरी ओर जनवादी सघर्ष भी तीव्र गति स बढ रहा है। कोई कहानी के हमशक्ल होने की बात कर रहा है तो कोई 'साथक कहानी' का नारा लगाने का प्रयास कर रहा है। अनेक वादो के नाम पर कहानीकार छोटे छोटे खेमो म बटकर लोगो का ध्यान अपनी ओर आकर्पित करन की कोशिश कर रहे हैं।

पल प्रतिपल मे सकलित कहानियाँ बिना किसी नारेबाजी के सामाजिक चेतना की कहानियाँ हैं। इन कहानियो मे मानव मन की विविध स्थितियो का चित्रण हुआ है। इन कहानियो की सबसे बडी विशेषता यह है कि ये अपन परिवेश स बहुत गहरे और गम्भीर रूप स जुडी हैं। आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक सभी क्षेत्रो मे व्याप्त भ्रष्टाचार को नये से नये कोण से उठाया गया है।

चाहते हुए भी स्थानाभाव के कारण कुछ लेखको की रचनाएँ न दी जा सकी। इसके प्रति मैं क्षमाप्रार्थी हूँ।

स्नेह-सहयोग के लिए सकलित कथाकारों के अतिरिक्त आदरणीय भाई ज्ञानप्रकाश विवेक, तारा पांचाल व श्रीनिवास वत्स का विशेप आभारी हूँ।

—देश निर्मोही

कथा-क्रम

हिन्दी कहानी का विकास और समकालीन आलोचना

□ अखिल अनूप

हिन्दी कहानी आज वहाँ नहीं है, जहाँ आज से दो-ढाई दशक पहले थी। उसकी प्रकृति संरचना और सम्प्रेषण में मूलभूत परिवर्तन आया है। कहानी की संवेदना बदली है और कहानीकार का दृष्टिकोण बदला है। आज का कहानीकार जहाँ कथानक की दृष्टि से अपने समय की सच्चाइयों से टकरा रहा है, वहीं शिल्प की दृष्टि से वह प्रचलित मानदण्डों से परे जाकर नयी-नयी संभावनाएँ तलाश कर रहा है।

यह सही है कि हिन्दी कहानी की चर्चा के नाम पर हिन्दी आलोचना आज भी 'नई कहानी' के ही युग में जी रही है। आलोचना के मानदण्ड उस अनुपात में कतई नहीं बदले हैं जिस अनुपात में रचना में बदलाव आया है। चूंकि हमारे यहाँ आलोचना के जरिये ही रचना को जानने और समझने की परिपाटी विकसित की गयी है, इसलिए यह भ्रम खूब फैल गया—या फैला दिया गया—है कि जब आलोचना ही समकालीन कथा रचनाशीलता का निषेध कर रही है तो अच्छी कहानियाँ न तो लिखी जा रही हैं और न ही 'नई कहानी' के हस्ताक्षरों के वजन के रचनाकार रह गये हैं। कुल मिलाकर हिन्दी कहानी की दशा और दिशा निहायत चिन्ताजनक है और यदि समय रहते कथाकारों ने इस ओर ध्यान नहीं दिया तो कहानी निकट भविष्य में उसी वीरगति को प्राप्त होने वाली है, जो हश्र अच्छी कविता का हो रहा है। यानी हिन्दी कहानी को लेकर अक्सर चिंतित हो जाने वाले 'महाप्रभुओं' का नजरिया कुछ कुछ उस बुड्ढे व्यक्ति जैसा हो गया है, जो अपनी तमाम उम्र गुजार चुकने के बाद अतीत पर गौरवान्वित होता है, वर्तमान से असंतुष्ट रहता है और भविष्य को लेकर दो-टूक कह सकता है कि सर्वनाश निश्चित है।

कहना न होगा कि यह एक असंगत, बेबुनियाद और पूर्वाग्रहयुक्त दृष्टिकोण

हिन्दी कहानी का विकास और समकालीन आलोचना

☐ अखिल अनूप

हिन्दी कहानी आज वही नहीं है, जहाँ आज से दो-ढाई दशक पहले थी। उसकी प्रकृति संरचना और सम्प्रेषण में मूलभूत परिवर्तन आया है। कहानी की संवेदना बदली है और कहानीकार का दृष्टिकोण बदला है। आज का कहानीकार जहाँ कथानक की दृष्टि से अपने समय की सच्चाइयों से टकरा रहा है, वहीं शिल्प की दृष्टि से वह प्रचलित मानदण्डों से परे जाकर नयी नयी संभावनाएँ तलाश कर रहा है।

यह सही है कि हिन्दी कहानी की चर्चा के नाम पर हिन्दी आलोचना आज भी 'नई कहानी' के ही युग में जी रही है। आलोचना के मानदण्ड उस अनुपात में कतई नहीं बदले हैं, जिस अनुपात में रचना में बदलाव आया है। चूंकि हमारे यहाँ आलोचना के जरिये ही रचना को जानने और समझने की परिपाटी विकसित की गयी है, इसलिए यह भ्रम खूब फैल गया—या फैला दिया गया—है कि जब आलोचना ही समकालीन कथा रचनाशीलता का निषेध कर रही है, तो अच्छी कहानियाँ न तो लिखी जा रही हैं और न ही 'नई कहानी' के हस्ताक्षरों के वजन के रचनाकार रह गये हैं। कुल मिलाकर हिन्दी कहानी की दशा और दिशा निहायत चिंताजनक है और यदि समय रहते, कथाकारों ने इस ओर ध्यान नहीं दिया तो कहानी निकट भविष्य में उसी वीरगति को प्राप्त होने वाली है, जो इधर अच्छी कविता का हो रहा है। यानी हिन्दी कहानी को लेकर अक्सर चिन्तित हो जाने वाले 'महाप्रभुओं' का नजरिया कुछ कुछ उस बुड्ढे व्यक्ति जैसा हो गया है, जो अपनी तमाम उम्र गुजार चुकने के बाद अतीत पर गौरवान्वित होता है, वर्तमान से असंतुष्ट रहता है और भविष्य को लेकर दो टूक कह सकता है कि सर्वनाश निश्चित है।

कहना न होगा कि यह एक असंगत, बेबुनियाद और पूर्वाग्रहयुक्त दृष्टिकोण

है। हिंदी कहानी आज अपनी विकास यात्रा मे संक्रमण दौर से गुजर रही है। जो यह कहते हैं कि 'नई कहानी' के बाद कहानी ही नहीं लिखी गयी, या लिखी गयी तो बेहद कृत्रिम, अस्वाभाविक और अतिरंजनाओ से परिपूर्ण, उन्हें जानना चाहिए कि रचना कभी भी एक पड़ाव पर नही रुकती। रचना का सतत् विकास उसकी जीवंतता की अनिवार्य शर्त है। जब 'नई कहानी' के कहानीकारो का इसके बावजूद स्वीकार किया गया कि प्रेमचन्द की यथार्थवादी परपरा से स्थूल रूप मे उनका कोई लेना-देना नही था, तो समकालीन कहानी को सिर्फ इस बिना पर कैसे खारिज किया जा सकता है कि वह 'नई कहानी' जैसी नही बन पा रही है?

आज कहानी 'नई कहानी' जैसी नही बन पा रही है यह तो उसकी निजी पहचान और अपनी विशेषता है। यह भी उसकी अपनी ही विशेषता है कि कई मायनों मे वह पूर्ववर्ती कहानियो की तुलना म कही समृद्ध सार्थक और युगीन है। प्रख्यात कथाकार रमेश उपाध्याय के मुताबिक, 'कहानी को परखा के कोई शाश्वत प्रतिमान नही होते क्योकि कहानी लगातार बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियो के साथ कदम मिलाकर चलती है और बदलती रहती है।"

तो क्या आज की कहानी के निर्मम आलोचको को यह मानने से भी गुरेज है कि पिछले कुछ दशको की सामाजिक परिस्थितियाँ वही की वही हैं? यों तो कुछ समस्याएँ शाश्वत होती हैं लेकिन क्या उन समस्याओ स लड़न के हथियार अपने समय की जरूरत के मुताबिक नये-नये रूप मे सामने नहीं आते? 1857 के प्रथम स्वाधीनता सग्राम म अग्रेजो के खिलाफ जो बिगुल बजाया गया था क्या गाधीजी का नेतत्व भी वही स्वर दे रहा था? प्रथम स्वाधीनता सग्राम से लेकर भारतीय राजनीति मे गाधीजी के उदय के प्राय छह दशकों के समय म शाश्वत समस्या एक ही थी—अग्रेजो स मुक्ति। तो फिर गाधीजी ने 1857 का ही रक्तरंजित रास्ता क्या नही अपनाया? वस्तुत इस तरह के प्रश्नों का कोई अत नहीं है। 1857 के सिपाही भी अपने समय और परिस्थितियो के हिसाब से प्रासगिक थे और गाधीजी भी अपने युग की अतर्विरोधपूर्ण बारीकियो पर नजर रख रहे थे। इसी तरह से 'नई कहानी' ने जब अपनी पहचान बनायी तो वह इसलिए अप्रासगिक नही हो जाती कि उसम प्रेमचन्द का सा ग्रामीण यथार्थ और इस यथार्थ का मनोजगत नही था। लेकिन तब आज की कहानी इस आधार पर कैसे बन टू आल रिजेक्ट की जा सकती है कि उसमे 'नई कहानी जसी अनुभववादिता—या कह कि क्षण प्रतिक्षण की बारीक चीर फाड—नही है और वह प्रचलित धाराओ से अलग जाकर नयी-नयी धाराओं को जन्म दे रही है? हम किसी लेखक के लिखे पर तो मनचाही टिप्पणी के लिए बेशक स्वतत्र हैं, लेकिन इतने स्वच्छन्द कब से हो गये कि लेखक को यह बताने लगें कि उसे कैसा ही लिखना है, जसा

हमने लिखा है या जैसा हम चाहते हैं? यदि कोई ऐसी स्वयंभू टिप्पणी करता है तो लेखक को पूरा अधिकार है कि वह उस टिप्पणीकार को ही रिजेक्ट कर दे और साफ साफ कहे कि हमें तुम्हारी टिप्पणियों की जरूरत नहीं है क्योंकि उससे हमारी रचना बाधित होती है। आलोचना का आधार रचना है, रचना का आधार आलोचना नहीं है और ऐसा प्रायः हुआ है कि आलोचना में स्थान न पाने वाली रचना दीर्घजीवी भी हुई है और सार्थक भी।

हिंदी आलोचना में एक और परम्परा भी पनपी है। आलोचना लिखते समय 'भूतपूर्व' हो चुके लेखकों की तो चर्चा खूब की जाती है, लेकिन उन लोगों को जान बूझकर 'इग्नोर' किया जाता है जो न केवल लगातार लिख रहे हैं, बल्कि अच्छा लिख रहे हैं। इसके अपने फायदे हैं। 'भूतपूर्वों' पर चर्चा करके आलोचक अपनी जवाबदही से मुक्त हो जाते हैं, जबकि कोई भी समकालीन लेखक उनसे पूछ सकता है कि इस आलोचना का मतलब क्या है? हमारे यहाँ आलोचक—और प्रायः लेखक भी—यह माने बैठे हैं कि उनका लिखा अंतिम है—उसे ब्रह्मवाक्य मानकर स्वीकार करो। जबकि न तो लेखक और न ही आलोचक अपने लिखे की जवाबदेही के लिए स्वतन्त्र होने चाहिए। लेखक के साथ यह छूट अवश्य है कि यदि उसकी रचना पर सवाल उठाये गये हैं तो उन्हें अनुत्तरित करके 'मौनं स्वीकार लक्षणम्' की तर्ज पर उसे लेखकीय स्वीकृति माना जा सकता है, जो कि एक तरह से उसकी निजी स्वीकृति होती है। लेकिन आलोचक सर्जक नहीं है। वह दूसरे के सृजन पर अपनी धारणा बनाता और बताता है और इसमें भी संदेह नहीं कि उसकी धारणा से तमाम दूसरे लोग भी अपनी धारणाएँ बनाते हैं। तो फिर हमें उससे यह जवाब पाने का हक क्यों नहीं है कि अमुक रचना पर उसने यह धारणा किस आधार पर बनायी? या समकालीन रचनाशीलता को छोड़कर उसने 'भूतपूर्वों' पर ही काम क्या किया?

बेशक यह तय करना आलोचक का अधिकार क्षेत्र है कि उसे किन पर काम करना है? लेकिन इतना तो पूछा ही जा सकता है कि वह समकालीन रचनाशीलता पर काम क्यों नहीं कर रहा है? यदि सचमुच समकालीन रचनाशीलता इतनी रद्दी और अप्रासंगिक है, तो उसके क्या कारण हैं? हम मानते हैं कि स्वस्थ आलोचना समकालीन रचनाशीलता के विकास में भी मदद करती है, लेकिन विकास कैसे होगा—यदि यही न पता हो कि विकास बाधित होने के कारण क्या हैं और वह कारण कितने जेनुइन हैं? निःसंदेह यह पड़ताल तभी संभव है, जब लेखक और आलोचक के बीच संवाद की गुंजाइशें हो, सवालों की उठा-पटक हो और आलोचक इस प्रकार की दंभपूर्ण उद्घोषणाएँ न करे कि मैं तो नये लेखकों को पढ़ता ही नहीं। मुझे याद है कि गुड़गाँव की एक गोष्ठी में कहानी की आलोचना करने में घण्टे भर से लगे विश्वविद्यालय के एक विद्वान प्रोफेसर ने आत्मविश्वासपूर्ण मुद्रा

मे यह निष्कष दिया कि मैंने प्रेमचन्द के बाद से आज तक न तो किसी कहानीकार को पढ़ा है और न ही किसी रचना को। फिर भी आयोजकों की तरफ से उन्हें समारोह की अध्यक्षता करने के लिए बाकायदे न्योता गया था और वह भी एक युवा कहानीकार के कहानी संग्रह पर अपनी अमूल्य राय जाहिर करने के लिए। इस प्रकार की आलोचना रचना को कैसे बाधित करती है इसका नतीजा भी जल्दी ही सामने आ गया। जिस कहानीकार ने उक्त प्रोफेसर महोदय को सादर आमन्त्रित किया था उसकी एक भी रचना उस गोष्ठी के बाद सामने नहीं आयी, जबकि उससे पहले उसके तीन तीन कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके थे। अच्छे या बुरे, यह अभी दीगर प्रश्न है।

असल मे मूल समस्या यही है कि लेखक लिखे नियमित लिखे और लिखना उसकी प्राथमिकता हो। लिखे पर चर्चा या उसे श्रेष्ठ अश्रेष्ठ साबित करने की चेष्टा तो बाद का प्रश्न है। मैं जोर देकर कहना चाहूँगा कि आज कहानियाँ न केवल भारी सख्या मे लिखी जा रही हैं बल्कि बहुत अच्छी कहानिया भी लिखी जा रही हैं। विगत चार पाच वर्षों मे पत्र पत्रिकाओ और सग्रहो के माध्यम से सामने आयी कहानिया आश्वस्त करती हैं कि हिन्दी कहानी की मुख्यधारा एक बार फिर से यथार्थवादी धारा होने जा रही है। हिन्दी कहानी का समकालीन यथार्थवाद इस मायने मे और भी सशक्त है कि वह समाज मे घट रहे का हू ब हू चित्रण करना ही यथार्थवाद नहीं मानता, बल्कि यथार्थवादी प्रवृत्ति यह पनपी है कि रचना में जीवन को पूरी आस्था और पूरे अतर्विरोध के साथ उतारा जाय। समकालीन कहानी, यदि एक ओर, समाज मे नासूर फैलाने के लिए जिम्मेदार पाखण्डी दिमागो को बेनकाब करती है और वर्ग शत्रुओ तथा समाज द्रोहियो की पहचान कराती है, तो दूसरी ओर उन अतर्विरोधो और कमजोरिया पर भी उगली रखती है, जो आम जनता द्वारा मनुष्य की बेहतरी के लिए चल रहे सघर्षों की बुनियाद में निहित हैं। इस प्रकार से आज की कहानी मनुष्य और उसके सघर्षों से सीधे सीधे जुड़ती है और मानवीय ऊर्जा और आस्था के उन बिन्दुओ को पकड़ने का प्रयास करती है, जो साहित्य और समाज को बेहतर बनाने की अनिवार्य शर्तें हैं।

आस्था साहित्य की ही नहीं सघर्ष की भी बुनियादी जरूरत है। जिस जीवन को उन्नत और मनुष्य को बेहतर बनाने की लड़ाई एक व्यापक पैमाने पर विचार और व्यवहार के धरातल पर, लड़ी जा रही है, वह लड़ाई बिना आस्था के अधूरी है। इसलिए आवश्यक है कि कथाकार सघर्ष के लिए जमीन तैयार करने के साथ साथ जीवन के प्रति आस्था भी पैदा करे। यह निश्चय ही हम सबके लिए सुखद स्थिति है कि ऐसे कहानीकारों की एक लम्बी कतार मौजूद है जो जीवन, सघर्ष और साहित्य की एक वस्तुपरक समझ के साथ अपनी रचनात्मकता को जी रहे

हैं। हालांकि बहुत नामो के उल्लेख या कहानियो के विस्तृत विवरण की यहाँ गुंजाइश नही है लेकिन जिन लेखको ने इधर लगातार आस्था की शर्तों को पूरा किया है, उनमे शैलेश मटियानी रमेश उपाध्याय, सत्येन कुमार, विजय और सजीव प्रमुख हैं। सत्येन कुमार की कहानी 'पनाह' हो या रमेश उपाध्याय की 'हँसो, हिमा हँसो' ये अपने अपने स्तर पर उन सधि बिन्दुओं की तलाश करती हैं, जो मनुष्य को मनुष्य से जोडे हुए हैं। एक ही भावभूमि पर दो भिन्न दृष्टिकोणो से लिखी गयी ये कहानियाँ उन हालातो की पड़ताल करती हैं, जिन्होने देश मे कौम, मजहब भाषा, धर्म और जाति-पाँति के नाम पर सामान्य इसानी रिश्ता तक को नेस्तनाबूद कर दिया है। और इसी नेस्तनाबूद करने की कोशिश के खिलाफ एक हस्तक्षेप है, नये लेखक भगवानदास मोरवाल की कहानी 'पहली हत्या'।

सत्येन कुमार की कहानियो के बारे मे मेरी आम धारणा यह रही है कि उनकी कहानियाँ मर्म को छूती तो हैं, लेकिन झकझोरती नही। किन्तु प्राय दो वर्ष पूर्व प्रकाशित उनकी कहानी 'पनाह' को पढने के बाद लगा कि इस कहानी के लेखक मे मर्म को झकझोरने की ही नही, कँपा देने की भी असी क्षमता है शायद उस क्षमता का सर्जनात्मक इस्तेमाल अभी तक हो नहीं पाया। इसानी रिश्ता और मानवीय सम्बन्धो के खोखले होते चले जाने के बावजूद, यह कहानी मनुष्य-मनुष्य के बीच किन्हीं ऐसे अतसूत्रो की खोज करती है जो इस बात की गारण्टी देते हैं कि मनुष्य का मनुष्य से इसानी नाता तमाम झंझावातो के बावजूद कभी खत्म नही हो सकता। मुझे यह कहने मे कोई सकोच नहीं कि 'पनाह' अपने दौर के यथार्थ को पकडने वाली सर्वाधिक सक्षम और सशक्त कहानियो म से एक है। इसी तरह रमेश उपाध्याय की कहानी हँसो हिमा हँसो' भी उन्हीं सूत्रो और सिरो की तलाश करती है जिन्हे खत्म करने के लिए बच्चो तक के मस्तिष्क को धोया जा रहा है। यह कहानी आगाह करती है कि समय रहते यदि सामाजिक जीवन के तौर-तरीके नहीं बदले गये तो अगली नस्लें अभिशप्त मानसिकता लेकर जीने पर मजबूर होंगी। इसानी प्रेम और सद्भाव 'मनुष्य' मात्र के अस्तित्व के लिए आज अनिवार्यता बन चुका है। लेकिन 'पनाह' और हँसो हिमा हँसो की सबसे बडी खूबी है उनका नायाब शिल्प। एकदम अनूठा, सभान्तशील और सर्वग्राह्य। अतर यह है कि जहाँ 'पनाह' मर्म को कँपाती है, वही 'हँसो, हिमा हँसो' बेचैन और सावधान हो जाने के लिए विवश करती है।

सजीव की कहानी 'वापसी' को 'अपराध' के बाद की उनकी कथा यात्रा का सबसे महत्वपूर्ण पडाव माना जा सकता है। यह कहानी दो मुल्को के बीच युद्ध, युद्ध की असगतियो और नतीजो से मानव सवेदना के आहत हो जाने को प्रस्तुत करती है। यह निष्कर्ष देती है कि युद्ध हमेशा शासक वर्गों की महत्वाकांक्षाओ की पूर्ति के लिए होता है। लडाइयो का जिसको सबसे ज्यादा खामियाजा भुगतना

पड़ता है, वह आम जनता ही होती है और इसलिए जरूरी है कि अवाम का रौंदन वाली लड़ाइयाँ न हों। अहिन्दी भाषी प्रदेशों की पृष्ठभूमि पर हिन्दी म नियमित और विविध कहानियाँ लिखने वाले कथाकार विजय की 'वो सुरीली' भी एक ऐसी कहानी है जिसे इस दौर की श्रेष्ठ रचनाओं म रखा जा सकता है। पहाड़ की पृष्ठभूमि पर लिखी गयी 'वो सुरीली' पहाड़ की पूरी संस्कृति, वहाँ के सामाजिक जीवन, आचार विचार, मानवीय-पारिवारिक रिश्ते और पहाड़ बनाम मैदान की अपरिभाषित द्वद्वात्मक विचारधारा को हमारे सामन रखती है। यह कहानी अपन परिवेश से पूरी आत्मीयता और अपनापा कायम करती है और पर्वतीय अचल के उन विविध रूपों से हमारा साक्षात्कार कराती है जो घाटियों वादियो म गूँजते घटा घडियालों से लेकर सिंह-गर्जनाओं तक के लोक सवेदनात्मक सरोकारों म व्याप्त हैं।

शैलेश मटियानी ने इधर कहानियाँ बहुत कम लिखी हैं लेकिन जो कहानियाँ पिछले कुछ वर्षों म प्रकाश मे आयी हैं उनम कम से कम दो कहानियाँ ऐसी जरूर हैं, जो यह आभास दिलाती हैं कि हिन्दी कहानी की स्थिति बहुत अच्छी है और निश्चय ही उसका भविष्य उज्ज्वल है। ये कहानियाँ हैं 'अर्धांगिनी' और 'मेरा एकलव्य'। जहाँ 'मेरा एकलव्य' हरिजन शिष्य और ब्राह्मण गुरु के बीच पनपते रिश्तों के बीच यह भरोसा देती है कि विद्या किसी जाति विशेष की बपौती नहीं होती, कोई भी शिक्षा प्राप्त कर सकता है, वहीं 'अर्धांगिनी' पति-पत्नी के बीच व्यक्त न हो सकने वाले पवित्र निश्छल और तरंगित भावनामयी प्रेम की ऊष्मा और ऊर्जा को व्यक्त करती है। हालांकि इस कहानी मे कथा का कोई बँधा बधाया फाम नहीं है, इसलिए ऐसी खोज करने वाले सवाल उठा सकते हैं कि इसमे कहानी ही नहीं है, लेकिन यदि एक क्षण को भी पूरे आवेग के साथ जीना और रचना ही सजन हो तो अर्धांगिनी' को एक कालजयी सृजन मानने म तकलीफ नहीं होनी चाहिए।

प्रेम के विविध रूप होते हैं। वह केवल पवित्र निश्छल और तरंगित भावनाओं का गुच्छा ही नहीं होता। उसम घुटन भी होती है कुठा भी होती है अपनी असमर्थता का एहसास होता है और वासना के सागर मे डूबने की इच्छा होती है। यानी सामान्य जीवन के सफेद स्याह जितने भी पक्ष होते हैं प्रेम म उन सभी पक्षों का अनुपात मिल जाता है। यह एक अलग बात है कि किसके हिस्से मे प्रेम का कौन सा पक्ष आता है? सिर्फ इसी एक दशक मे प्रेम के विविध पक्षों पर केंद्रित दो अच्छी, बहुत अच्छी रचनाएं सामने आयी हैं—(1) उदय प्रकाश की 'रामसजीवन की प्रेमकथा' और (2) धीरेन्द्र अस्थाना की 'खुल जा सिमसिम'। मजे की बात यह है कि दोनों ही रचनाएँ खासी विवादास्पद रही हैं लेकिन इन दोनों ही कहानियों में प्रेम का जो स्वरूप है, वह बेहद सांसारिक किस्म का है।

ऐसा नहीं है कि इस सामारिकना मे भावुकता नही है, लेकिन यह भावुकता आत्मविश्वास की ही नही आत्महीनता के आत्मबोध की भी है। इसी तरह, भावुकता का स्वरूप किशोरजन्य मनःस्थितियो म नही पनपा है, बल्कि प्रेम का स्तर यह है कि उसकी कोई सीमा नही है। न उम्र न स्थान, न सामाजिक बधन और न ही दैहिक नैतिकता। जो है, जैसा है या जैसा हो सकता है, उदय प्रकाश और धीरेन्द्र अस्थाना न प्रेम के सदभ मे इस समग्र मनोजगत को उभारा है, जहाँ पाठक लेखक के साथ साथ सफर करता है।

उदय प्रकाश की ही एक अन्य कहानी 'तिरिछ' पर पिछल दिनो काफी चर्चा हुई है। लोकमान्यताओ से निकली यह कहानी निश्चय ही अनूठी है। तिरिछ यानी एक ऐसी लोकमान्यता, जिसकी जडें सस्कारी मन क भीतर इतने गहरे तक पैठी हुई हैं कि व्यक्ति स्वय ही अपना आखेट कर डालता है। सामाजिक सस्कारशीलता के इस हद तक प्रतिगामी होन का यह कहानी सीधे सीधे निषेध करती है और इसी नाते एक उत्कृष्ट रचना है।

इस दौर की जो अन्य कहानिया रेखाकित किय जाने लायक हैं, उनमे हैं ज्ञानप्रकाश विवेक की 'पिताजी चुप रहते है', रमेश बतरा की 'थप्पड', चित्रा मुद्गल की 'जगदबा बाबू गाँव आ रहे हैं', महेश दपण की 'दीनानाथ', प्रदीप पत की 'राजपथ का मेनहोल', सृजय की 'कामरेड का कोट', अखिलेश की 'बडी अम्मा', मुशरफ आलम जौकी की 'फिलहाल', गिरिराज किशोर की 'वल्द रोजी' और गोविन्द मिश्र की 'अथ आख्यान'।

जहाँ रमेश बतरा की 'थप्पड' आम आदमी के अह और स्वाभिमान की कसौटी है, जो अब यह जानना चाहता है कि उससे जिन्दा रहने का हक क्या छीना जा रहा है, वही प्रदीप पत की कहानी 'राजपथ का मेनहोल' दिखावे की सरकारी कार्यपद्धति पर सीधा व्यग्य करती हुई उसकी जटिलता की परतें खोलती है। ज्ञानप्रकाश विवेक की कहानी 'पिताजी चुप रहते हैं' किसी भी निम्न मध्यवर्गीय भारतीय परिवार की ऐसी व्यथा-कथा है जो उसके अभावों म स निकलकर उसकी नियति बन चुकी है। हर घर सर पर एक अदद छत होने का सपना देखा करता है और उस सपने म ही उसकी सारी खुशियाँ दफन हो जाती हैं। ज्ञानप्रकाश विवेक ने अपनी निजी किस्म की भाषा शैली मे इस यथार्थ को बहुत नजदीकी और बारीकी से पहचाना है और यही उनकी सर्जनात्मकता की अपनी विशेषता है। इसी तरह महेश दपण की कहानी 'दीनानाथ' भी निम्न मध्यवर्ग क त्रासद जीवन का जीवत चित्र है। दीनानाथ क माध्यम स जिन्दगी को जीते, भोगते बचैन होते, उसस लडते, टूट जाते और टूटकर फिर एक बार खडे होते आदमी के सघर्ष और सघर्ष की परिणति को बयान करने वाली इस कहानी मे महेश दपण ने आदमी के अदरूनी तनावों को खोलने का काम किया है। सृजय की कहानी 'कामरेड का

काट' पर यह आरोप लगाया जाना गलत है कि यह वामपंथी संघर्ष को कमजोर करने के उद्देश्य से लिखी गयी है। इस तरह से तो हर असहमत रचना को बिना विचार के रद्द किया जा सकता है। वस्तुत 'कामरेड का कोट' संघर्षशील शक्तियों को आगाह करती है कि उनकी एकजुटता जरूरी है—अपनी सीमाओं को तोड़कर, खामियों और अंतर्विरोधों को दूर करके। अब समय आ गया है कि लेखक ही राजनीति के मार्ग दर्शन मे नहीं, राजनीति भी लेखकों से सीखकर अपनी दिशा निर्धारित करे। तब वह संघर्ष सचमुच जनता का होगा।

महिला कथाकारों मे मन्नू भण्डारी के बाद जिस एक कथाकार ने अपनी निरंतर सक्रियता का परिचय दिया है, वह हैं चित्रा मुद्गल। चित्रा मुद्गल की कहानियाँ परिवेश से ऊर्जा प्राप्त करती हैं और कथा ही नहीं भाषा और शिल्प के स्तर पर भी अपनी जनपक्षधरता घोषित करती हैं। उनकी कहानियों के पात्र हमारी अपनी दुनिया मे रहते, जीते और बात करते हैं। उनकी मानसिकता और सोच आस पड़ोस म कहीं भी नजर डालने पर मिल जायेगी। सबसे बड़ी बात तो यह है कि चित्रा मुद्गल रूढ़ अर्थों मे 'महिला कथाकार' नहीं हैं, जिनके कुछ निश्चित सब्जेक्ट हैं, और न ही अतिरंजित रूप से इतनी बोल्ड हैं कि हास्यास्पद लगने लगें। उलटे 'जगदंबा बाबू गाँव आ रहे हैं' जैसी कहानियों मे वह जिस तरह स सामंती प्रवृत्ति और राजनैतिक अवसरवाद की खबर लेती हैं, उसका कायल होना पड़ता।

यह मान लेने मे कोई संकोच नही होना चाहिए कि आज का दौर कहानियों क इतिहास का स्वर्णिम दौर है। इतनी बड़ी संख्या मे इतनी अच्छी कहानियाँ पहले कभी नहीं लिखी गयी। इसलिए जो लोग यह कहते हैं कि 'नई कहानी' के बाद से अच्छी कहानी लिखी ही नहीं गयी, उन्हें चाहिए कि इस तरह का वक्तव्य देने से पहले वह अगल-बगल म झाककर देख लें कि कहीं उन्हें 'नॉन सीरियसली' तो नहीं लिया जा रहा। वैसे भी सरदार भगतसिंह ने एक बेहद जरूरी बात कही थी कि, ' पढ़ो, पढ़ो, विरोधियों के तर्कों का सामना करने के लिए उन्ह पढ़ो।"

तो क्या हमारे चर्चाकार उन्हें मैं आलोचक नही कहूँगा, अब भी अपने समकालीनों को पढ़ने के लिए तैयार नहीं?

(यह निबंध 'कथा भाषा मंच', हरियाणा द्वारा फरीदाबाद मे आयोजित 'कथा समारोह मे गत 14 मई 1989 को पढ़ा गया था।)

एक जिन्दा चेहरा

□ अशोक गुप्ता

गोली की एक तेज आवाज के साथ सब खत्म हो गया।

सतोखी ने अपनी बदूक कधे पर रखी और पीछे की ओर लौट पड़ा निहायत बेपरवाह। बिना कही रुके उसन पास खडा एक घना नीम का पेड खोज निकाला और पेड की बेतरतीब फैली एक ऊची सी जड पर बैठ गया, उसी तरफ मुह करके जिधर से वह आया था, ताकि तारी का आना आसानी से देखा जा सके और वह मातादीन को इशारा करके गदगी साफ करा दे। अपने इस काम म काफी पुराना हो गया है सतोख सिह। तभी तो नय भरती वालों की तरह लाल झडियां लाद कर नही चलता वह बन्दूक के साथ। बस, एरिया मे जितने फायर का मौका मिड जाय, तमाम करके बैठ जाता है कहीं छाया म, और लारी देखकर वही से चिल्लाकर कहता है, 'अबे आ ' मातादीन अपनी जबान फँटता हुआ आता और एक एक को पूछ से पकडकर लारी मे फेंक देता, बिना नाक पर रुमाल लगाये, यू ही खी-खी हंसता हुआ सा। 'ये ल्यो, मारी भी, तो साली कुतिया '

पेड की जड पर बैठकर सतोखी ने कान से उतारकर बीडी दांतों के बीच दबा ली और जेब मे माचिस तलाशने लगा।

'हाय रब्बू तू य क्या कर रहा है सतोखी ?' और दांतों के बीच से बीडी छूटकर गिर पडी, और वह घबराहट मे इधर-उधर देखने लगा। आसपास कोई भी नहीं था। उसने जमीन से उठाकर बीडी फिर अपन दांतो मे फँसा ली, लेकिन उसकी सांस तब भी काफी तेज चल रही थी और चारों तरफ सारा कुछ सुन्न हो गया था। बालो को हवा मे बेतरतीब उडने से बचाने के लिए उसने सिर पर एक रुमाल बांध रखा था उसे खोला, फिर बिना वजह अपने चेहरे, हाथो, और गदन पर रगडता हुआ-सा पेड से पीठ टिकाकर निढाल बैठ गया, पलकें मूंदे हुए, और उसकी जिन्दगी पीछे लौटने लगी।

पता नहीं क्या बात है कि उसकी जिन्दगी आसानी से पीछे नहीं लौटती,

लेकिन जब लौटती है तो ऐसे जैसे किसी पहाड़ी के उबड़ खाबड़ ढलान वाले रास्ते पर कोई व्हील चेयर नीचे ढकेल दी जाये। व्हील चेयर का तेजी से लुढ़कते जाना वह देखता रहता और उसे लगता कि उस पहिये वाली कुर्सी के हत्थों पर बाहें टिकाये व्यक्ति का चेहरा कभी उसका हो जाता, कभी ताई का। उसके भीतर सिर्फ ताई का चेहरा ही एक ऐसी रस्सी है जो उसे खींचकर चाहे जितना पीछे ले जा सकती है। दस बरस बीस बरस पच्चीस बरस और बस। उसके पहले के आठ बरस तो वे आवाज हैं शायद—उलझे हुए और गुम, बस उनसे जुड़ा हुआ अशेष, और पहचान की संज्ञा का धुँधला सा बिंब है उसका नाम, जिसे उसने अपनी मुट्ठियों में भींचकर अपने सीने में बहुत गहरे छुपो रखा है। सतोखी यानी सरदार सतोख सिंह विरदी।

आठ बरस का ही तो था वह जब ताई के यहाँ नौकरी पर आया था। उस समय सतोख सिंह के सिर्फ नाम में ही सरदार विशेषण था और ताई भी तब ताई नहीं थी, सिर्फ बड़ी बहू थी 'नारायण विला' में। केवल नाम से ही नहीं बल्कि देखने भालने और सोचने, चाह लेने से भी। एक-एक का सुख दुख एक एक की भूल चूक सब उनके बड़प्पन में जुड़ते-सुधरते रहते थे। उस में कौन राजा, कौन प्रजा? कोठी खेत और मिल के सारे पंद्रह बीस नौकर मजूर थे मातहती में उनमें जैसे रामसिंह शर्मा वैसे सतोख सिंह विरदी। सब एक जैसे प्राणी एक-दूसरे से घुले मिले।

केवल एक समय का पहिया ऐसा होता है जो लगातार चलते रहने पर भी नहीं घिसता-टूटता लेकिन उसके साथ साथ दौड़ता इंसान बदरंग होता जाता एक दिन रेत का जर्रा बनकर मिट्टी में मिल जाता है, इतना धीरे धीरे कि सारा कुछ बिना घटे ही घटता रहता है स्वत। शिबू मानिक की शादी हुई तो सारी की सारी कोठी रोशनी के सैलाब में डूब गयी एक बार। फिर उनके लड़का हुआ, तो हवेली तो क्या हवेली की एक-एक ईंट एक एक प्राणी के घर सतयुग आ गया। नारायण बाबू मारे खुशी के कभी शिबू को कभी प्रभु को सहसा बाँहों में भर लेते और नाच जाते। और बड़ी मालकिन वह तो जगत ताई हो गयीं। जितनी खुश उतनी विभोर उधर सतोखी भी कोठी के भीतर कुछ और ही होता जा रहा था धीरे धीरे। रामसिंह के साथ खैनी खानी सीखी तो नरोत्तम ने उसके हाथ बीड़ी थमा दी। चौदह बरस का सतोख सिंह कभी मिल पर काम करता, कभी कोठी पर, लेकिन मेहनत भरपूर पूरे मर्द जैसी और खुराक भी भरपूर पूरे मर्द जैसी। जेब में बीड़ी का बंडल। मौका लग जाय तो भूप, तिरपत के साथ तीन पत्ती, और जिस दिन बड़ी बहू ताई बनीं सतोखी के मुँह दारू भी लग गयी। 'नारायण विला' ठाकुरों की कोठी थी जिसमें उस मौके पर बड़े मानिक से लेकर एक अदना सा मजूर तक खुश था लेकिन जब सतोखी के बारे में ताई को पता चला तो

उन्होंने उसे बुलाकर बिना पूछे पहले दो हाथ रसीद कर दिये। 'कल का छोकरा, दारू पीता है।' और अगले ही दिन से उसकी ड्यूटी पक्की हो गयी सिर्फ कोठी पर। नन्हे ठाकुर की खास खिदमत मे, ताई की आँख के ठीक नीचे।

उसी दिन से एक विशेष और विलक्षण युद्ध शुरू हुआ। सतोखी को ताई का चेहरा देखकर एकदम से बदले, और तमतमाहट की गर्मी चढ़ जाती। शायद यह सोचकर कि इतने कुचले जाने पर भी क्यो उन्हें उसके भीतर झाँकता बचपन नजर आता है। और इधर, ताई का मन भर भर आता दया और ममता से, सतोखी के लिए। बदनसीब, बेचारा!

युद्ध चलता रहा अनवरत। दोनो के वार एक दूसरे के लिए निरर्थक सिद्ध होते रहे। सतोखी की हरकता से ताई थोडा सतर्क हो गयी थी। शायद वह रह-रहकर टप्प से मार देता है नन्हे को या कान खीच लेता है। सतोखी भी कुछ और काइयाँ हो गया ताई के साथ। चुपके से बीडी पी आता भागकर बाग मे, बिना इच्छा के भी। सुबह काम पर आता तो कभी अलसाये और नशे मे टूटे होने का सा स्वाँग करता। फिर कभी सीधे कभी किसी सहारे पूछताछ होती, मुह सूघा जाता और यकायक सब पराजित हो जाते। वह इठलाता घूमता। नन्हें के साथ कुछ और क्रूर होकर पेश आता और दोपहर बाद जब वह खाना खाकर लौटता तो उसने लगायी होती। बस थोडी सी, बतौर एक बदले की शर्त के।

नन्हा तीन बरस का हो चुका था। सतोखी सत्रह का, और नन्हें के प्रति उसकी निममता उससे भी अधिक कुछ और गबरू। नन्हें को देखकर सतोखी सोचता, 'क्या सरदार सतोख सिंह बिरदी के नीचे भी ऐसा ही बचपन दबा होगा कही?'

'लेकिन उसके माँ कहाँ थी?'

कौन कहता है कि बचपन के किलकने के लिए माँ जरूरी है नन्हें के भी माँ कहाँ है?'

'है तो।'

'अरे होना, न होना बराबर है उसका। सारा दिन कोठी म पडी सोती है टाँग पसारकर या इधर उधर बन-सँवर के डोलती है, बस। नन्हाँ तो ताई का है अपने पूरे बचपन के साथ'

ताई सतोखी की दुश्मन और सतोखी इधर उधर देखकर झट नन्हे के दूध का गिलास एक साँस म आधा कर देता। सचमुच सरदारो जैसा सरदार होता वह तो उसकी मूछें शायद गवाही भी देती, लेकिन अब तो सतोखी था वह, सिर्फ सतोखी, जैसे रामसिंह शर्मा वैसे सतोख सिंह बिरदी। वसे भी इस कोठी मे यह पता ही किसे था कि यह अपना सतोखी सरदार का पुत्तर है। लेकिन जो भी है, है भरपूर।

अतिभीषण भूकम्प से भी कभी धरती इतनी नहीं काँपी होगी, जितना 'नारायण विला' थरथरा गया था उस दिन। अच्छी खासी ताई रात नन्हें को खिला सुलाकर, और ठाकुरद्वारे में जोत जलाकर सोईं, और जब भोर भई, तो वह अपाहिज थी। इतना गहरा पक्षाघात। बाईं ओर का हर अंग बेकार हो गया। जुबान ने शब्द खो दिये और आँखों ने स्पष्ट दृष्टि। चेहरा तो इतना विकृत हो गया कि बस हे भगवान ! जिसने भी देखा, बस राम राम करता ही बाहर आया। लेकिन देखा भी किसने ? दयी कुदृष्टि भला दवन की होती है ? अगले ही सप्ताह ताई अपनी व्हील चेयर पर आ गयी। फिर से नन्हें के आसपास और सतोखी की निगरानी पर। सतोखी भी रोया था उस दिन, लेकिन भरपूर रोने के बाद उसने दारू भी पी थी और आधी रात को उठकर टहलता रहा था, अपनी कोठरी के बरामदे में, 'अब तो नन्हें की एक चौथाई माँ रह गयी आधी से। लेकिन इतनी भी बहुत है मुझ जैसे के सामने' और वह मुट्ठियाँ भींचते भींचते सो गया था, भीतर ही भीतर लड़ाई तेज करता हुआ। नन्हाँ तब पाँच का हो चला था।

▢

एक भरपूर तमाचा पड़ने के बाद जैसे आँख के आगे छाये घटाटोप अँधेरे के बीच चिनगारियाँ छूटती हैं, वैसी ही चिनगारियाँ समेटे सतोखी नारायण विला' से भागा था यकायक। जो कुछ घटा था उसे याद करके सरदार सतोख सिंह का कलेजा इतना जबर नहीं था जो हिल न जाता। ताई के अपाहिज होने के बाद सतोखी के मन में उनका डर, उनका लिहाज उतरकर घुटनों पर भी नहीं रह गया था और ताई के पास सारी ममता थी केवल दाहिने अंग में, जिससे वह घसीटकर अपनी व्हील-चेयर किसी के पास ला पाती थी और अपने पत्थर चेहरे और जुबान से कुछ कुछ कहती थी, ढर सारा आकृतिहीन और उपेक्षणीय।

उस शाम कोठी पर कोई भी नहीं था। केवल नन्हाँ, नन्हें का खिदमतगार, और ताई। ताई का होना, न होना बराबर था, फिर उस समय तो वह नन्हें के कमरे में भी नहीं थी। सतोखी के हाथ में बीड़ी थी बेपरवाह। सतोखी का ताई के सामने भी बीड़ी के सुट्टे खींचकर धुआँ निकालते रहना अब नया नहीं था, फिर उस दिन तो ताई के पीछे की बात थी। अचानक सतोखी की बीड़ी चमकी और नन्हें की गर्दन को छू गयी होले से। नन्हाँ छटपटाकर रोया तो सतोखी उठकर टहल लिया दूसरी ओर। फिर थोड़ी देर में सतोखी की बीड़ी नन्हें की उंगलियों पर, नन्हें की पीठ पर नन्हें के घुटनों पर। नन्हाँ बिलबिलाकर चीखता रहा बेजार और सतोखी की गिरफ्त से अपना हाथ छुड़ाता रहा। सतोखी हँसता रहा और खेलता रहा, कि सारा कुछ अकस्मात एकदम थम गया। अचानक एकदम फ्रीज ! पता नहीं कब ताई अपनी अपाहिज व्हील चेयर लुढ़काते-खुड़काते उमक एकदम

पास थी। एकदम करीब। एक चीख एक आक्रोश की लहर उनके चेहरे पर थी आकारहीन। केवल कुछ रिरियाते गिडगिडाने जैसे स्वर उनके विकृत आठो से बाहर आ रहे थे, पता नही कैसे?

सतोखी ने घूमकर ताई को देखा।

कुछ पल, कुछ गिने हुए पल दोनो एक दूसरे को भर आँख देखते रहे कि एकाएक ताई ने अपना दाहिना हाथ बढाकर मेज पर रखा पीतल का फूलदान उठा लिया। इसके पहले कि सतोखी पैतरा बदलकर सम्हल पाता ताई ने उससे अपने चेहरे, अपने सिर पर, मारना शुरू कर दिया अन्धाधुन्ध। फूलदान की चोटो से उनका सिर लहूलुहान हो गया। चश्मे के शीशे टूटकर यहाँ-वहाँ चेहरे मे धँस गये शायद और चेहरे को खून से सराबोर कर गये, मगर ताई रुकी नही, सतोखी ने यह देखा तो हक्काबक्का रह गया। नन्हे की चीख पहले तो ताई के आ जाने से थम गयी थी पल भर, फिर दुगुनी हो गयी। सतोखी ने पहले व्यर्थ दायें बायें देखा, फिर पलटकर चल दिया, निहायत बेपरवाह। लेकिन भीतर से बाहर आते आते तक उसका बदन तेज बुखार जैसा तप आया था। वह बिस्तर पर पडा रहा रात भर। फिर उठकर उसने अपना सामान समेटा। बक्स की तह मे सलीतर लगे नोटो को फिर से गिना और इत्मिनान पाया। अपनी तनख्वाह से उसने खर्च ही क्या किया था? थोडा भीतर बाहर बेचैनी से टहलने के बाद वह फिर बिस्तर पर गिर रहा। खाने भी नही गया भीतर, बस सोया पडा रहा बूट पण्ट समेत। पता नही कितने पहर रात गये वह उठा और बिस्तर समेटने लगा। फिर पता नही क्या सोचकर बिस्तर उसने वही छोड दिया बस पैताने से कबल खीचकर उसने बक्स मे लगाया और उसे उठाकर बाहर हो लिया। आते आते वह बिस्तर पर से तकिये के नीचे पडा अद्धा साथ समेट लाया था। उसने उसे वही खडे खडे खाली किया और अपनी कोठरी के दरवाजे पर पटक चकनाचूर करके बाहर हो गया निहायत बेपरवाह बिना पीछे देखे जैसे उसके सामने भरपूर तमाचा पडने के बाद का घटाटोप अँधेरा और चमकदार चिन्गारियाँ उसे आगे खीच रही हो।

☐

कैसा था तेजा!

बिल्कुल अपने नाम की तरह तेज, चमकदार और खरा, और वह सतोखी को मिल भी गया नारायण विला छोडने के तीन घटे बाद ही, सुनसान रास्ते पर धूल मे पडे चमकदार सिक्के की तरह। नींद मे झपकती पलको मे सतोखी को पता ही तब चला जब अपने ट्रक से गर्दन निकालकर तेजा ने उसे आवाज मारी, वे ओए पगले घर का फालतू है क्या?' और आनन-फानन मे दरवाजा खोलकर उसके सामने कूद पडा।

'शहर जाना है ?' और सतोखी ने बोदेपन से सिर हिला दिया था। उसका बक्स खुद उठाकर तेजा ने ट्रक मे रखा था और बाजू से उठाकर सतोखी का भी ऊपर खीच लिया था। ट्रक कब तक किधर और कितना चला सतोखी को कुछ खबर नहीं। वह तो मिनट भर मे ही दरवाजे से टिककर लुढक लिया था, अद्धे की तरग कही छुपती है भला ? कुछ घडी दिन चढे जब धूप थोडी फलने लगी थी तेजा ने एक ठिकाने ट्रक रोककर उम उसके सामान सहित नीचे उतारा और अपनी कोठरी खोलकर उसम लुढका दिया, फिर बिना कुछ कहे बाहर से कुडी मारकर चल दिया अपना ट्रक लेकर। सतोखी जागा तब, जब पीछे की खिडकी से सूरज ने आकर उसकी आँखो म अपनी उगलियाँ घुसेड दी। जागकर उसने कोठरी के भीतर पानी तलाशा और भरपूर छीटा से अपना चेहरा तर कर लिया। नाली पर बैठकर उसने कुल्ला किया। आले मे रखे शीशे के टुकडे म अपना चेहरा देखकर बालो पर कघी फरी और बक्स खोलकर कपडे निकालने लगा। बक्स बन्द करके वह उसम ताला मारन ही वाला था कि चरमराकर कोठरी का दरवाजा खुला और आठ नौ बरस का एक छोकरा, एक प्याला चाय और दो टोस लेकर भीतर दाखिल हुआ। 'लो चाय पियो। तेजा दोपहर तक आयेगा। सामन दुकान है, कुछ जरूरत हो तो माग लेना।' और एक सास मे सारा कुछ कहकर वह तेजी से वापस भाग गया। सतोखी ने चाय पी। दुकान के पास नल पर जाकर भरपूर नहाया, कपडे बदले और तेजा की इतजार म बाहर पेड के नीचे आकर बठ गया, बिना कुछ सोचे। तेजा आया और आते ही सवालो की झडी लगा दी सतोखी के सामने। चाय पी ? दारू पीकर जगल म क्यो बैठा था ? घर स भागकर आय हो ? कोई जुम कर बैठे हो क्या ? कोई सदमा लगा है छाती मे ? कोई मौत ? जलालत ? हार ? कोई इश्क-प्यार का चक्कर ? और सतोखी बुत बना सा बठा रहा था। वसा ही सपाट और बेपरवाह। फिर तजा ने कुछ नही पूछा। बस अगले दिन स दोनो ने साथ-साथ काम पर जाना शुरू कर दिया। ट्रक पर माल के साथ आने-जाने का काम कीरत ट्रासपोट कम्पनी' म। हर तरह का काम, काला भी सफेद भी। दिन मे चलने का और रात भर का भी। मीठी जुबान और लात जूते का भी और कुछ ही समय म सतोखी रम गया इस काम म। फिर थोड और दिनो मे कम्पनी का दादा हो गया। पता नही कब और कस उसकी आँखो के आगे व्हील-चेयर घूम जाती और सामने वाला बन्दा नहीं हो जाता उसकी निगाह म।

तेजा।

तजा सरदार तो नहीं था पजाब का भी नहीं था वह, लेकिन जिस दिन अद्धा उतार लेन क बाद उस दुख-सुख की बातो क बीच पता चला कि सतोख सिंह सरदार है तो एक दुहत्थड दिया उसन सतोखी के जबडे पर। सरदार होकर मुह को बीडी लगाता है कमीन। और हडबडाकर सतोखी न मुह भीच लिया तजा

का। 'मार ले साले चाहे जितना, लेकिन इतनी जोर से मत चिल्ला। मेरे भीतर का सरदार अगर जाग गया तो उसका भाई-बाप क्या कीरत सिंह बनेगा? मेरा बाप क्या था मुझे पता नहीं, लेकिन वह हड्डीखोर नहीं था समझा।' और सतोखी फफक्कर रो पड़ा था। उसे लगा कि आज वह रो ले जी भरके। जरा भी उसके भीतर खारे पानी का दरिया कुछ थमा लगता, वह नजरों के आगे घूमती व्हील-चेयर के नीचे हाथ दे देता और नये सिरे से फूट पड़ता। तेजा भी रोया था उस दिन सतोखी के साथ, और रोते-रोते दोनों साथ साथ सो गये थे। सबेरे काम पर जाते-जाते तेजा ने बस इतना कहा था, यार तू पुरबियों की तरह खैनी खाकर थूकता चलता है गंदा लगता है। इसे छोड़ने की सोच।' और धीरे धीरे सतोखी अपने इस पुरबियापन से उबर गया था। बीड़ी वह अब भी पीता था तेजा से छुप-छुपकर और तेजा जब भी पकड़ लेता तो एक बेबस खीझ भरी आवाज मार देता उसे, 'हाय रब्ब, ये तू क्या कर रहा है सतोखी?' और सतोखी के दाँतों के बीच दबी बीड़ी छूटकर गिर पड़ती हर बार। तेजा के साथ रहते-रहते सरदार जागा, न जागा एक ईमान जरूर जाग आया था सतोखी के भीतर। सही और गलत को चीरकर अलग कर देने जैसा ईमान, जिसने उसके अतस में घूमती व्हील चेयर को कुछ और निर्बाध बना दिया था। दिनोंदिन बदलता गया था सतोखी सिवाय इसके कि दाँतों के बीच से बार बार छूटकर गिर पड़ने के बावजूद बीड़ी पीता था वह और न हूँ की मार करके एक झन्नाटेदार तमाचे के बाद के घटाटोप अँधेरे और छूटती हुई चमकदार चिन्गारियों में खो जाता था थोड़ी देर के लिए।

ऐसे ही बहुत जरा-सी बात थी उस दिन, जब किसी मिल के अदने से मुंशी ने अनजाने में तू-तड़ाक की थी तेजा से, नौकरी से निकलवा देने की धमकी के साथ, और सतोखी ने झपटकर उसका कालर पकड़ लिया था वहीं, 'अबे ओ काणे की औलाद नौकरी से निकलवायेगा तेजा को? रखवा भी सकता है किसी को रोजी पर, है इतनी औकात?' और उसके आगे ताई का लहूलुहान चेहरा घूम गया था। 'मैंने सैकड़ों के जबड़े तोड़कर उनके हाथ में दे दिये हैं मालूम है? लेकिन कइयों को जनखा समझकर बिना हाथ लगाये छोड़ भी देता हूँ मैं, जैसे तुझे छोड़ रहा हूँ, थू' और सचमुच सतोखी उस विद्रूप से परे धकेलकर हाथ झाड़ता हुआ चल दिया था।

सतोखी ने थूकना छोड़ दिया था लेकिन वह जनखा नहीं छोड़ पाया सतोखी को, और सतोखी की नौकरी खत्म हो गयी।

नौकरी नहीं थी लेकिन तेजा तो था सतोखी के साथ। 'देख लिया हड्डीखोर सरदार कीरत सिंह को, ऐसा ही सरदार तू बनाना चाहता था मुझे?' और ठहाके के साथ सतोखी ने तेजा की पीठ पर एक धौल जमा दिया था। तेजा दिन-भर काम पर रहता और सतोखी व्हील चेयर के पीछे दौड़ता रहता सारा दिन

और थककर सो जाता—जब तब शाम को दानो साथ साथ ढाबे पर जाकर रोटी खाते रहते। हारर या कभी-कभी सार ही, और दुख सुख की बह सुनकर सो जाते।

एक दिन जब तेजा रात को वापस आया तो उसके चेहरे पर एक उधेड़बुन थी। जो उसने आन ही सतोखी ने झपटकर पकड़ ली थी।

'कोई काम लाया है क्या मेरे लिए ?' और तेजा ने न ना कहा न हाँ, बस टढ़ी करके गदन हिला दी।

'कहाँ ?'

'यही छावनी म।'

'तब ता सरकारी होगी ?'

हाँ, है तो सरकारी ही।

और सतोखी उछलकर बठ गया था चेतन हाकर। 'क्या काम है ? जल्दी बता ?' और अधीर होन लगा था। लेकिन तेजा का मुंह वैसे ही सूजा रहा फिर भी। 'कुछ कह न यार' सतोखी बिलखन लगा।

'रहने दे सतोख, बडा गन्दा काम है, छोड।'

'नही-नही, तू बता तो सही।

'तो सुन, बन्दूक चलायगा ?'

'क्यो नही ? क्या फौज म लेंगे मुझे ?'

छोड सतोखी, वह काम तेरे लायक नही।'

'साले झापड मार दूगा।'

'कुत्ते मारेगा ?'

'हाँ मारूँगा क्या कुत्ते मारने का काम है ?'

तेजा ने कोई उत्तर नही दिया, बस अगले दिन छावनी म हवलदार के सामने खडा कर दिया सतोखी को।

हवलदार ने सतोखी स दो चार बातें पूछी।

हवलदार ने सतोखी के कागज भरे और उस पर सतोखी के दस्तखत कराये और उसे मैदान मे ले जाकर उसका काम समझाया फसइए !

और बन्दूक की एक तेज आवाज क साथ सब ठडा हो गया। मातादीन सलाम मारकर उस ठढी दिशा की ओर दौड पडा, आनन फानन मे सफाई कर देने के लिए।

और वह बन्दूक सतोख सिह के हाथ मे आ गयी।

सतोखी के हाथ में बन्दूक !

बदन पर मलेशिया की वर्दी।

अतीत और वर्तमान को कुचलकर गुजरती हुई बदहवास व्हील चेयर और

भविष्य, एक एक करके नन्हे मे बदलते हुए कुत्ते और सतोखी की बन्दूक ! . . .

कुत्ते मारने की नौकरी मे बडी बरकत थी सतोखी के लिए। छावनी मे क्वाटर, तेजा की सतोखी को सौगात, एक खूबसूरत प्यारी सी बीवी और सतोखी की खुशनुमा कारगुजारी, उछलता-कूदता प्यारा सा तोशी। तोशी, सतोख सिंह की इकलौती औलाद, जिसकी आँखें अपनी माँ की आँखो की तरह पनीली थी, और नाक बाप की तरह सुडौल और ऊँची। तोशी हर रोज अपने पप्पा की लायी हुई रग बिरगी नयी कमीजें पहने डोलता रहता छावनी मे, लॉली पॉप चूसता हुआ।

कैसा था तेजा ?

एकदम अजीब। जब-तब रास्ता रोककर खडा हो जाता सतोखी का, 'तू घर म भी कुत्तेमार की तरह तनकर खडा रहता है क्या ? तेरे आने से तोशी किलककर तेरी ओर भागता क्यो नही ? बोल न, तेरे घर मे घुसते ही भाभी के ओठ कपकँपाकर खिल क्यों नही जाते ?' और सतोख सिंह बौडम सा सिर झटककर बिना जवाब दिय आगे चल देता, एकदम बपरवाह सा।

चल तो दता लेकिन सोचता, कहाँ से उलीचू अपना प्यार बाहर को ? सारा कुछ तो व्हील चेयर के नीचे कुचल गया है जैसे। सब ठिठककर पत्थर हो गया है ताई का लहूलुहान चेहरा देखते देखते। तभी तो अपनी तरफ से लाख मुलायमियत स वह आवाज देता अपने पास बुलाता, तो भी तोशी सहमकर ठहर जाता वही का वही, नन्हा सा, और वह भीतर से बेतरह छटपटाकर तल्ख हो जाता, आज भी उतना ही जितना तीन बरस पहले हो जाता था, जब डोरी ब्याह के आयी थी।

आज।

एक पथरीली चट्टान स व्हील चेयर टकरायी, और सतोखी की बेआवाज चीख क साथ ताई का लहूलुहान चेहरा फ्रीज हो गया। जिन्दगी इससे पीछे और जा भी कितना सकती थी आखिर, कही न कही तो उसे किसी पथरीली चट्टान से टकराकर रुकना ही था।

सतोखी भी रुका।

रुककर उसन अपने आसपास फली धूप को अपनी परछाईं से नापा और उठ खडा हुआ। मातादीन अभी नही आया था शायद। बेइरादा उठकर वह बोझिल-सा उस मरे हुए कुत्ते तक आया और उस एकटक देखने लगा।

चकनाचूर खोपडी, और लटकी जुबान वाला चेहरा। कभी नन्हाँ, कभी कीरत सिंह और कभी वह खुद।

नही, नही ताई का नही। भीतर ही भीतर झपटकर उसने अपने भीतर कही उठ रही एक बात को फुर्ती से काट दिया।

'उनका तो हमेशा हमेशा स एक जिन्दा चेहरा है एक भरपूर जिन्दा चेहरा। उससे देखा नहीं गया और अधिक। उसने सिर पर बाँधा हुआ बडा सा रुमाल, जो

अब उसके हाथ म था तह खोलकर कुत्ते के मुँह पर डाला और चुपचाप पीछे चल दिया।

बन्दूक जमा करने वह कोत तक नही गया, रास्ते मे ही दायाराम को थमा गया, याचना के साथ। हाजिरी करवाने के लिए बडे फाटक तक भी नहीं आया, वहीं मे हाथ हिलाता हुआ निकल गया अपने क्वाटर की ओर, शार्टकट मारकर, तेजी से कदम बढ़ाते हुए।

जब वह घर पहुँचा तो डोरी शायद रसोई म थी और तोशी फश पर ही खेलता खेलता सो गया था। रोज की तरह सतोखी बाहर से आवाजें मारता हुआ नही घुसा बल्कि खामोशी से आकर कमरे के बीचोबीच खडा हो गया। उसने चारो ओर देखकर, जमीन से तोशी को उठाया और पास पडी चारपाई पर लिटा दिया। और अपलक उसे देखता रहा। फिर उसे कुछ हुआ कि वह हौल स तोशी के पास बैठ गया और उसके बालो पर प्यार से हाथ फेरने लगा। उसने झुककर तोशी का एक चुम्मा लिया, और अचानक पता नही क्या हुआ कि वह एकदम बौरा गया। उसने तोशी को भरपूर बाँहा म उठा लिया और सीने मे भीच कर उसे चूमता गया, चूमता गया। एक, दो, दस, पच्चीस, पचास और न जाने कितनी बार, और कब तक, जब तक वह खुद भी थककर निढाल नहीं हो गया। तोशी का चेहरा गर्मी और पसीने से भीग आया था। उसने उस अपनी कमीज स पोछा और धीरे से उठ खडा हुआ।

थोडी हलचल सुनकर डोरी कमरे म आयी और सतोखी को देखकर सिर पर पल्ला करती हुई वापस लौट गयी सतोखी के लिए शवत पानी लाने के लिए।

सतोखी वही पास खडी एक कुर्सी पर टिक गया और तोशी का चेहरा देखत देखते मुस्कराहट फैलाने लगा। अभी क्या हो गया था उसे? लेकिन जो भी हुआ था उसे बहुत अच्छा लगा था।

अन्दर डोरी शबत बना रही थी और सतोखी यह सोचकर मुस्करा रहा था, कि चलो सबसे अच्छा यह हुआ कि डोरी ने उसे ऐसी बौडमपन की हरकत करत नहीं देखा। नही तो क्या होता ?

शुद्ध समाचार

☐ रमेश बतरा

नई दिल्ली, तीस जनवरी आज सुबह करीब दस बजे 'दैनिक बगावत' का सवाददाता दिल्ली परिवहन निगम उर्फ डी० टी० सी० की मुद्रिका सेवा का लाभ उठाकर राजघाट पर उतारकर आगे बढ जाने वाली भीडमभीडी बस मे किसी खबर का जुगाड करने के लिए जा रहा था। वह बाकायदा सीट पर बैठा हुआ था मगर भीड इस कदर बेकायदा थी कि उसे लग रहा था वह ना ही बैठा होता तो अच्छा रहता। फिर भी वह बैठा ही रहा और सोचने लगा कि अगर उसे इस स्थिति का वणन करना पडे तो वह कुछ इस तरह से लिखेगा कि बस की भीड म बच्चे, बच्चे नहीं रह गये थे! बूढे बूढे नही रह गय थे! मद, मद नहीं रह गये थे! लडकियाँ, लडकी नही रह गयी थी! औरतें, औरत नही रह गयी थी! यहाँ तक कि आदमी, आदमी नहीं रह गया था। सबके सब सवारियाँ बन चुके थे और किसी तरह उस सवारी म अटे हुए थे। सवारी हालाँकि हर पडाव पर रुक रही थी लेकिन चलती जा रही थी और और सवारियो के सतोप के लिए बस इतना ही काफी था।

मगर सहसा रिंग राड पर प्रगति मैदान वाले मोड से पहले बस रुक गयी। सवारियो ने साचा, आगे तिराहे पर लाल बत्ती होगी, इसलिए दम साधे हरी बत्ती होने का इतजार करने लगी। दो मिनट चार मिनट छह मिनट क्या गुजर गये मानो युग बीत गये सवारियाँ बेचैन होने लगी। सबने कयास लगाया कि तिराहे पर सबसे आगे खडा वाहन खराब हो जाने के कारण यातायात जाम हो गया है। उन्होने ड्राइवर को सुझाव दिया, 'भई, जैसे तैसे बगल वाली जगह से बस का निकाल ले चलो।' मगर बात बनी नही क्योकि तभी तिराहे की तरफ से आते हुए एक मजदूर किस्म के आदमी ने किसी सवारी के पूछने पर बताया, 'नेता लोग राजघाट गये हुए हैं। जब तक वे वहाँ से वापस नही लौटते, यह रास्ता बद रहेगा।'

यह सूचना मिलने पर एक प्रौढ़ सवारी बौखला गयी, 'मगर गये क्यों हैं वे राजघाट पर?'

एक युवा सवारी ने उस पर हँसते हुए उसे मूर्ख जतलाकर जवाब दिया, 'इतना भी नही मालूम आज तीस जनवरी के दिन महात्माजी शहीद हुए थे।'

प्रौढ़ सवारी कुछ और बौखला गयी, 'कौन महात्माजी?'

'राष्ट्रपिता मोहनदास करमचंद गांधी!'

'तो ऐसे बोलो ना, घुमा फिराकर बात क्यों करते हो? यह तो मुझे भी मालूम है।'

'मालूम था तो पूछ क्यों रहा था?'

'तुम्हारी जनरल नॉलेज जांच रहा था पर तुम फेल हो गये।'

सवारियां एकबारगी तो ठठाकर हँसीं, लेकिन फिर जैसे स्वयं भी लजाकर आश्चर्यचकित रह गयीं। दैनिक 'बगावत' के संवाददाता के भी आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वह अब तक अपनी सीट पर किसी के यहाँ जाकर शोक प्रगट करने वाली मुद्रा में बैठा हुआ था। प्रौढ़ की बात सुनकर वह चौकस हो गया और बोला, 'मगर महोदय, इस नौजवान ने तो बिल्कुल सही जवाब दिया है, फिर यह फेल कैसे हो गया?'

प्रौढ़ का चेहरा खिल उठा और वह 'प्रेम से मिलिए' वाले आयोजन की भांति गला खँखारकर कुछ इस तरह से बोला मानो उसे पहले से ही मालूम हो कि अब उससे क्या पूछा जाने वाला है। उसने कहा 'बहुत अच्छा सवाल पूछा है आपने दरअसल इस नौजवान की रगों में नया खून ठाठें मार रहा है। यह अभी नही जानता कि सही क्या होता है और गलत क्या होता है। इसका जवाब होना चाहिए था नेता लोग महात्मा गांधी के नाम पर टसुए बहाने गये हुए हैं कि हम तुम्हें याद नही करना चाहते, लेकिन तुम्हारी सूरत साये की तरह हमारे पीछे पड़ी हुई है। इसलिए, ऐ महात्मा! कोई ऐसा उपाय कर कि तुझसे हमारा पिंड भी छूट जाये और हमारी नाक भी न कटे!'

सवारियाँ न हँसीं, न मुस्करायीं न रोयीं।

प्रौढ़ सवारी अपनी जीत के आलम में अलमस्त होकर गुनगुनाने लगी 'प्रभुजी मेरी इतनी अरज सुनो, दास को गांधी मुक्त करो!'

संवाददाता की संवेदनाओं का संसार सब्ज हो उठा कि आज का दिन कितना बढ़िया दिन है सुबह सुबह सरेराह एक धाँसू 'बाक्स आइटम' मिल गया है तो जिस खोजी खबर का जुगाड़ करने के इरादे से वह जा रहा है, वो भी जरूर मिल जायगी। मगर इसके लिए तो उसे जल्द-अज-जल्द पहुँच जाना चाहिए वरना वह साला आलोक तोमर मुझसे पहले पहुंच गया तो सब गुड़ गोबर हो जायगा! उसने सोचा और सोचने लगा जिस जगह मुझे पहुंचना है वहाँ का

रास्ता दस-बारह मिनट का है। मैं पैदल ही चल दूं तो ज्यादा से ज्यादा आधेक घंटे में वहां पहुँच जाऊँगा। इतनी सी बात के लिए देर क्यों की जाये! मुझे पैदल ही चल देना चाहिए!

इसी ऊहापोह में वह अपनी सीट से उठने के लिए बस यूं ही उठना ही हुआ था कि एक सवारी ने सरपट रपटकर अपनी पुट्ठी सीट पर जमा दी कुछ इस तरह कि उस सवारी का मुंह सामने नहीं बल्कि दाहिनी तरफ था। कुछ इस तरह कि जैसे वह संवाददाता अब तक उसकी गोद में बैठा हुआ था! संवाददाता के मन में सीट पर बैठे रहने की बची खुची हसरत भी मर गयी और वह लूडो वाली गोट की तरह कहीं सीढ़ी चढ़ता तो कहीं सांप के काटने पर वापस लुढ़कता हुआ डी० टी० सी० की बस के उस व्यूह से बाहर आ गया!

सड़क पर पांव रखते ही उसने बेचैन सी राहत भरी सांस ली। अपने आप को परखा और यह पाकर कि वह सही सलामत है, वह तिराहे की तरफ बढ़ गया।

तिराहे पर यातायात रोकने के लिए केंद्रीय आरक्षी पुलिस की एक बस सड़क पर सड़क की चौड़ाई में खड़ी हुई थी। उसके बाद तिराहे के तीनों तरफ तीन सितारों वाले संतरी से लेकर फीतेदार और बिना फीतों वाले संतरी आड़ी-तिरछी मुद्राओं में तैनात थे। उन सबके चेहरे महात्मा गांधी की तस्वीर वाले विज्ञापन कि 'शराब मौत का घर है!' की भांति विज्ञापित कर रहे थे कि 'यहां से आगे जाना आफत को बुलाना है!'

उस तिराहे पर तरह-तरह की बसों से उतरे हुए देश के कई सौ बाशिंदे वहां से पैदल जाने को आतुर थे। यह उनका मौलिक अधिकार था मगर बिना फीती वाले एक संतरी की कड़कनी आवाज ने संविधान की नाक में नकेल डाल दी थी और वे लाख चाहने के बावजूद उस नकेल की लगाम से मुक्त नहीं हो पा रहे थे। इस बारे में यह कहना सचमुच सच्चा होगा कि उनकी बोलती ही बंद हो चुकी थी।

मगर ऐसे खतरनाक माहौल में एक पतला पतंगा साइकिल सवार ऐन तिराहे में पहुंचती सड़क की सीमा पर एक तीन फीती वाले संतरी से उलझा हुआ था। यह कह रहा था, 'अजी, मैं तो खुद ही मरा हुआ हूं मैं भला किसे मारूँगा? तुम मेरी तलाशी ले लो और मुझे जाने दो, वरना मेरी दिहाड़ी मारी जायगी।'

पर संतरी ने उसे वापस धकेल दिया, 'एक बार कह दिया, समझ ले लाख बार कह दिया तू आगे नहीं जा सकता।'

'मैं तो जाऊंगा।' पतला-पतंगा साइकिल सहित आगे बढ़ने को हुआ तो संतरी ने उसकी साइकिल को पीछे खींच लिया, 'साले, चुपचाप जा के उधर पटरी पर खड़ा हो जा नहीं तो तेरी भी साइकिल बना के दो साइकिलें पार्सल कर दूंगा

तेरी बीवी के नाम पर !'

'कर ले, यह करके भी देख ले !' कहता हुआ वह फिर से आगे बढ़ने को हुआ पर इस बार संतरी ने साइकिल का कैरियर पहले से ही कसकर थामा हुआ था। उसका चेहरा तमतमा गया और यह सोचकर कि 'यह हरामी ऐसे नहीं मानेगा', उसने तनिक नीचे झुककर साइकिल के पिछले पहिए का वाल्व खोलकर ट्यूब की हवा को हवा में सुरसुरा दिया। ट्यूब की हवा सनसनाती हुई बाहर निकली और पतला पतंगा किसी तेज बदबूदार भभके का शिकार हो जाने वाले मजलूम की तरह साइकिल का हैंडिल थामे थामे भाग खड़ा हुआ। पर संतरी ने उसे तीन चार कदम पर ही नाप लिया और बोला, 'माँ के दीने, तेरा भेजा घूम गया है क्या ?'

पतला पतंगा गिड़गिड़ाया, 'मेरे बाप, मुझे जाने दे। मेरी नौकरी का सवाल है !'

संतरी खीझ गया और उसने उसके गाल पर रैपटा दे मारा, 'अपनी एक नौकरी के वास्ते हम सबकी नौकरी लेगा क्या ?'

पतले-पतंगे के जिस्म का जुस्सा इतना नहीं था कि वह किसी हाजमेदार हाथ की हुज्जत सह पाता। वह चुपचाप अपने साइकिल को घसीटता हुआ पटरी पर जा पहुंचा और साइकिल को स्टैंड पर लगाकर खुद जहां खड़ा था वहीं बैठ गया। कुछ देर बाद जब शायद थप्पड़ के जोर पर उसके सिर से पाँव तक सकपकाती हुई चीटियाँ शांत हुईं तो वह साइकिल के हवा निकले पहिए को ताकता हुआ बुदबुदाने लगा और देखते ही देखते उसी संतरी की तरफ चल दिया।

संतरी उसे अपनी तरफ आता पाकर वहीं से चिल्लाया, 'उड़े ही डटा रह उड़े ही !' मगर उस पर कोई असर नहीं हुआ। उसी वेग से उसके पास आकर बोला, 'साइकिल के पहिए का वाल्व तो दे दे।'

वाल्व अभी तक संतरी के हाथ में था और वह उससे खेलता हुआ वक्तकटी कर रहा था। उसने वाल्व को ऐसे देखा जैसे कोई अनमोल रत्न हो और फिर कुछ इस भाव से कि 'जा तुझे दिया दान' उसने उसे पतले पतंगे की फैली हुई हथेली पर धर दिया। पतला पतंगा संतुष्ट हो गया। संतुष्ट होकर वह मुस्कराया और किसी हमदर्द की तरह बड़े प्यार से बोला, 'हवलदार, तुम्हें अपने नेताओं की जान बहुत प्यारी है ?'

संतरी ने उसे डाँट दिया जा के वहीं खड़ा हो जा अपने खटारे के धोरे।'

वह किसी मानिनी की तरह मचलकर बोला 'न न फिर भी

'तू जाता है या नहीं ? सिपाही ने टोक दिया, तो वह भी तनिक ताव खा गया 'मगर तुम मेरे सवाल का जवाब क्यों नहीं देते ?'

संतरी झल्ला गया, मैं तेरे बाप का नौकर हूं के ?

पतला-पतंगा सरकंडे की तरह तनकर अभिनय-सा करता हुआ बोला 'यह भी

मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं है महोदय।'

संतरी का सब्र छूट्टी बोल गया। वह उसे दोनों ठेलता हुआ बोला, 'जा बाबा जा। मेरी जान छो प्यारी है।'

'फिर तो तुम मेरे साथी हो!' पतला-पतंगा उस बावजूद चहक उठा, 'और साथी, एक बात 'एफ० आई० महात्मा गांधी लिया होते तो पहले मुझे जाने देते, क्यों सवाल है। इसलिए तू भी मुझे जाने दे। मेरी आधी दि है। तुम्हें महात्माजी का वास्ता !'

'बक-बक-बक-बक !' सिपाही ने दांत भींच लिए बास बंद कर। यह महात्मा गांधी नहीं राजीव गांधी है।'

मगर पतले-पतंगे पर उलटा असर हुआ। वह सत भागा और आठवें कदम पर ही रुककर चिल्लाने लगा, '...पूछता हूं उससे कि यह रास्ता उसने रुकवाया है लिया है। 'वह घर में बड़ा है तो क्या हुआ उमर में समझा दूंगा। समझदार होगा तो जरूर समझ जायेगा। राह जाते हुए नौकरीपेशा की साइकिल का रास्ता निक किसने दिया है। मैं जेठमलानी से कहूंगा कि वह इस बारे कानून बनवाये। तुम लोग पुलिस की वर्दी पहनकर ता मजबूर हो, मजबूर हो, पर इसका मतलब यह तो नहीं था कि संतरी ने उसके गाल पर छापा जमा दिया और लट्ठ बरसाकर अपने दोनों हाथों से उसका एक हाथ पकड़ हुआ परली तरफ पटरी तक ले गया। पटरी पर पकड़कर खड़ा किया और जोर से धक्का देकर उसे दूर धकेल दिया

पतला-पतंगा धक्के के जोर से पांच-सात कदम भागता गिरते गिरते हुआ को संभालने की कोशिश में डोलते-डोलते खिल्ली बराबर चौपाये की तरह खड़ा हो गया।

कई मिनट तक वह बस का उस रहा मानो हमेशा से लोग-बाग उसे देखते रहे 'हंसते रहे। वह कभी इधर। घूमकर पीछे निपोरता हुआ खिल्ली के मुंह में बड़ी भीड़ हुए खड़ा हो—क्यों जी, कैसा लगा यह सब ?

भीड़ का उत्साह ठंडा पड़ गया। लोग चलने-चलने को लगने लगे। मगर तभी वह उछलकर उठ खड़ा हुआ और [illegible] बोलने लगा, 'मारो मुझे गोली!'

हाथो से वापस घुमाकर
ड। मुझे अपनी जान

अपमानजनक स्थिति के
भार० लिख लो अगर
क यह मेरी नौकरी का
डी दलिया हुई जा रही

महात्मा के मूत, बक-

ी के हाथो से छिटककर
बुलाओ प्रधानमंत्री को
ा इन सतरियो ने राक
ास छोटा है। मै उसे
उससे पूछूगा कि अपनी
ल लेन का हक तुम्हे
ा बडी अदालत से कोई
शाही करते हो। मैं
?' वह यही तक पहुचा
न पर मॉ की गाली का
र उसे लगभग घसीटता
सने उस ऊपर खीचकर
।

चला गया और जब
ाो हाथ-पांवों के बल

स ही खडा हुआ हो।
ी सभी उधर गदन
को ताकने लगा मानो

मे घेरते हुए मजमा
तरी की तरफ गदन
मेरा शाप तुझे खा

जायेगा !' ,र ए ह लान रसाद

गालियाँ सुनते ही संतरी दौडता हुआ आया और उस प
करता हुआ बोला 'गाली देता है मच्छर !' नेता पतगा पतझड

'गाली दे सकता हूँ, इसलिए गाली ही दे रहा हूँ !' तुझे मारता बहुत
वे आखिरी पत्ते की तरह काँपा, 'तू मेरे बूते का होता तो मैं
मारता !' डंड और गालियाँ

संतरी ने आव देखा न ताव, ताबडतोड उस पर लात घूसे कोई प्रतिरोध नहीं
बरसाने लगा। पतला पतंगा न चीखा, न चिल्लाया। उसाय यहां मुलूक होना
किया। बडे धैर्य से पिटता रहा मानो जानता हो कि उसके स
है और उसने उफ तक नहीं करना है। यह मन स्थिति बडी

सबके साथ साथ संवाददाता को भी पतले पतंग की ला हो रहा था और
विचित्र लगी कि अभी तक तो वह सनक की हद तक हठ
अब किसी नितांत निढाल गूँगे की तरह पिटता जा रहा है। आम राय के अनुसार

संवाददाता शांतिमना युवक था। तथाकथित लोगों की आना चाहिए, किंतु
क्रांतिकारी को चरित्र के इस विरोधाभास पर क्रोध ही गे बढ़कर संतरी को
संवाददाता के मन में सहानुभूति उमड आयी और उसने र जायेगा।
रोकने के इरादे से कहा, मत मारिए भाई साहब, बेचारा म राटी की तरह खाये

'मरता है तो मर जाये ! कमीना मेर भेजे को लगर की म ही पतला पतंगा
जा रहा है !' कहते कहते संतरी का हाथ रुक गया और इत केरी का ताजी हवा
एकदम उठ खडा हुआ और चिल्लाया, 'और तू जो मेरी न
की तरह फाँक रहा है वो कुछ नहीं ?' दो काफी देर से इधर

तिराहे के उस पार खडा एक तीन सितारो वाला सतले पतंगे के चिल्लान
ही देखता हुआ न जाने क्या सोच रहा था। मगर ज्योंही पर'आ और दहाड
की चमक उसके कानों में पडी वह चीते की तरह दौडता
उठा 'क्या माजरा है हरिसिंह ?' न होकर बोला 'यह

संतरी ने गर्दन घुमाकर पीछे देखा और फौरन सावधा इसी वक्त जाऊँगा
बेवकूफ फालतू में नहीं मर रहा है जनाब कहता है अभी
साइकिल पे चढ़ के।' पर हुक्म दाग दिया

तीन सितारों ने पतले पतंग पर उडती-सी निगाह डाल
इसकी साइकिल उठाकर थाने में दाखिल कर दो।' सहज भाव से सलाह

थाने में क्यों दाखिल करवाता है ?' पतला पतंगा ब बच्च के काम था
देने वाले अन्दाज में बोला, 'अन्न पर भिजवा दे तो
जायगी। न सपके और उसकी

तीन सितारों का खून खौल उठा। वे बेंत लहराते हु

है ! तभी वहाँ लगातार बजते हार्न की हूटरनुमा आवाज सुनाई देने लगी और फिर दिखायी दिया कि एक सफेद जीप हवा से बातें करती हुई चली आ रही है। उसे देखकर तिराहे पर खड़े तमाम संतरी चौकस खड़े हो गये। भीड़ से कुछ कम दूरी पर खड़े एक संतरी ने भीड़ को दबकाया, 'सब लोग अपनी-अपनी गाड़ियों में चले जाओ।'

लोग वापस लौटने लगे मगर साइकिल ले जाता संतरी सहसा ठिठक गया। देखते ही देखते उसने साइकिल को दोनों हाथों से सिर के ऊपर तक उठा लिया और पूरा दम लगाकर उसे पटरी से दूर उछालता हुआ भागकर अपनी जगह पर तैनात हो गया।

पतला पतंगा राजघाट को जाने वाली सड़क की तरफ पीठ करके पटरी पर वहीं का वहीं बैठ गया और औंधे मुँह दूर जा गिरी अपनी साइकिल को ऐसे घूरने लगा जैसे किसी शहीद को श्रद्धांजलि अर्पित करना चाह रहा हो किंतु यह न जानता हो कि किसी शहीद को अपने श्रद्धा सुमन किस प्रकार अर्पित किये जाते हैं।

दुपहरी

☐ महेश दर्पण

ाह दखा, कितना सुन्दर लग रहा है न।'

उगली के इशारे से प्रीता ने मुझे दिखाया। कीचड के किनारे खिला था—ाल फूल—दुपहरी।

मैं देख रहा था। फूल को देखते वक्त एक फूल उसके चेहरे पर खिल उठा था जिसकी आभा कानों के निचले हिस्से तक खिंची थी, 'इसे उखाडकर डिब्बे म लगा लें !'

रग के साथ साथ फूल की उमग भी उसके चेहरे पर उतर आयी थी।

मैं अनायास अपने भीतर टहल रहा था। घर के नाम पर इन दो कमरो को वने दो साल होने को हैं। आज तक फूल का एक भी पौधा हमने क्यो नही लगाया होगा।

'यह लो, जड समेत उखाडकर लाना।' पडोस से लाकर खुरपी उसने मेरे हाथ म थमा दी।

सच, फूल अब इस घर की जरूरत है। खुरपी लिए मैं कीचड तक जा पहुँचा हूँ। इस दौरान प्रीता की आँखें मेरी पीठ पर लगी होगी। जब भी मैं आस-पास होता हूँ वह मुझे आँखो म भर लेना चाहती है—भरपूर।

☐

घास के बीच मे लगे यह पौधे अब तक इसीलिए नजर नहीं आये थे कि इनम फूल नहीं खिले थे। फूलो ने ही इन्हें पहचान दी है। हमारे फूल सूख गये हैं शायद इसीलिए हम अपनी पहचान खो बठे हों।

घास को अलग करते हुए मैं पौधो को सुरक्षित उखाड लेना चाहता हूँ। यह खास किस्म की घास है इसकी जरूरत अक्सर पूजा के ही वक्त पडती है। यूँ कभी-कभार मैं इसके तिनके से दाँतो के बीच सफाई भी कर लेता हू। पहली बार इस

घास का नाम मैंने सुमेधा दी स जाना था, 'इसे दूब कहत हैं पगले।' बरसो पुरानी बात है पर आज तक खिले फूल की सुगध की तरह मुझमे बसी है।

यह वही दिन थे जब फूल हमारे भीतर बाहर स महकते थे अपने रगो की चमक के साथ।

कैसा था वह दिन। जब उसने हरे गुलाब की खोज की थी। 'रोज कपटीशन' मे उसका 'ग्रीन रोज' पुरस्कृत हुआ था। ग्रीन राज जिसे अब तक लोग कैक्टस कहा करते थे

मुझे फूल का पौधा उखाडना है।

प्रीता ने अब तक रसोई मे से कोई डिब्बा खाली कर चमका लिया होगा। डिब्बानुमा गमला या गमलानुमा डिब्बा।

अतीत और वतमान म आदमी साथ साथ क्यो नही चलता ?

दूब की जडे सामा य नही हैं कि खीचा और उखड गयी। कितनी गहरी और मजबूत पकड है। मुझे अपनी जडें कमजोर क्यो लग रही हैं ! क्या मैं अपनी जमीन कही पीछ छाड आया हू। गीली मिट्टी म धँसा आदमी कैसा महसूस करता होगा !

पडोस के घरो से कुछ सिर बाहर झांक रहे हैं। जाने शर्माजी ग दगी मे से क्या उठाय ले जा रहे हैं।

'दुपहरी' भी है खूब। जरा भी जोर से पकडा और कोमल टहनी अलग। सबधा की तरह नाजुक। प्रीता भी तो कहती है सबध बहुत नाजुक होते हैं इन्ह बनाये रखने से ज्यादा जरूरी होता है निभाना। ठीक ही तो कहती है प्रीता। सबध दुपहरी सरीखे नही होते। टहनी टूट जाने भर से खत्म नही हो जाती दुपहरी। मिट्टी म रोपने भर की देर है चार छ दिन मे जडें पकड़ लेगी। टूट टूटकर भी जडो से जुड जाना ही शायद इस सबका मनपसद बना गया है। हमारी कमजोरी ही कसे हमारी पस द बन जाती है ! क्या हम सब भी टूट टूटकर फिर स जुड जाना नही चाहत !

फूल वाली दुपहरी वाटर बाटल' में लगी इठला रही है। नहीं, खुद वाटर बॉटल भी। कल तक यह निरथक इधर स उधर लुढकती उपेक्षित सी पडी रहती थी। अधूरी रह जान पर चीजें कैस अर्थ खो बठती हैं। ढक्कन खो जान स पहले प्रीता इस कस सहेजकर रखती थी। फिलहाल, यह एक गमले मे तब्दील हुई दुपहरी के साथ इठला रही है।

जान क्यो, गमला म लगाये गय फूलो के पौधे मुझे विचित्र से लगते हैं। तुलसी क लिए ही गमला लान की बात महीनो स चली आ रही है, अब तो खैर थक हारकर प्रीता ने डालडा क दो किला क डिब्बे म ही लगा दिया है तुलसी का पौधा।

'तुमन देखा, अब तो हमारी तुलसी म मजरी भी लग आयी है।' प्रीता चहक

रही है। पीछे से आकर, अपनी दोनों हथेलियाँ उसने मेरे दायें कंधे पर टिका दी हैं छेड़खानी का अंदाज, उसकी साँस साँस में बज रहा है। मंजरी हमारे भीतर खुशी बनकर फैल रही है।

'तुम एक बड़ा सा गमला ले आओ न यार! अपन उसमें चम्पा लगायेंगे। मुझे चम्पा बहुत पसन्द है।' उसकी आँखों में चम्पा महक रही है।

पहले पहल ऐसा नहीं था। तब शायद बड़ा संसार रहा होगा उसके सपनों का। अक्सर वह अदेखी जगहों पर जाने की योजना बनाती 'अबकी बार, सुनो, जब तुम छुट्टी लोगे न तो अपन मथुरा-वृन्दावन घूमकर आयेंगे हैं।'

'उसके लिए विधिवत छुट्टी लेने और प्रोग्राम बनाने की क्या जरूरत है? जब कहोगी चल निकलेंगे।'

बरस बीत रहे हैं। यह चल निकलना हुआ ही नहीं। महज घूमने के नाम पर कहीं जा सके हम!

'अरे जाओ, तुमसे तो कहीं चलने के लिए कहना बेकार है' उसकी आँखों में एक अलग ही भाव तैर रहा था। उदासी भरी उलाहना में डूबी यह आवाज इतनी गहराई से आ रही थी कि मुझे घबराहट होने लगी। सचमुच, कितने वर्ष गुजर गये।

ऐसी बातों का कोई जवाब नहीं होता। अपराधी की तरह जाने कितनी देर मैं गुमसुम पड़ा रह जाता अगर प्रीता न आ खड़ी होती लो चाय पी लो! घर में हो, तो पूरी तरह घर में रहा करो।'

अक्सर यही होता है। मैं उसे लेकर कुछ न कुछ सोच रहा होता हूँ और वह मुझे कहीं और पहुँचा समझती है। चीजें क्या कह दिये जाने पर ही अपना अर्थ रखती हैं?

चाय मेरे सामने स्टूल पर रखी है। रखी ही है। प्रीता जमीन पर पैर फैलाये आलू छील रही है। उसका इस तरह बैठना बहुत सहज होता है पर मैं भीतर तक सहमा रहता हूँ।

'तुम कुछ बताते बताते रुक गये थे न कल?' सीधी सरल भाषा में उसका सवाल बगैर किसी भूमिका के ही शुरू हो जाता है। शायद वह निरंतर निःशब्द संवाद बनाये रखती है।

'रुक गया था?' मैं सोच में पड़ गया हूँ।

'कहीं बाहर जाने की बात कर रहे थे न तुम?' घुटने के सहारे दायाँ पैर मोड़कर उसने इस तरह से आधी पालथी मार ली है कि बैठे हुए बाँए पैर के साथ करीब-करीब समकोण बन रहा है।

ओह हाँ। परसों अहमदाबाद जाना है यार, चला जाऊँ?'

'पूछ रहे हो या बता रहे हो?

'फिलहाल तो पूछ ही रहा हूँ।'

'मुझे तो लगता है तुम कुछ अलग ढग से अपने जाने की खबर भर दे रहे हो। आलू छीलते हाथो की गति ठहर गयी है। वह मेरी आँखो म कुछ पढ़ लेना चाहती है शायद।

'जरा सी बात का तुम ' मैं उसे समझाने के लहजे म कहना चाहता हूँ पर वह समझने के नही निणय के मूड म है 'यह जरा जरा सी बातें हैं? आज तक तुम जो कुछ करते रहे हो मुझसे पूछा है कभी तुमने। घर का भी आखिर कोई मतलब होता है एक दिन बाद ही इतनी दूर जाना है और तुम पूछ रहे हो ?'

'समझने की कोशिश तो करो। बगैर टिकट आये कसे मान लता कि मुझे जाना ही है। अब टिक्ट आया तो ।'

बिल्कुल ठीक यही तो कह रही हूँ मैं भी। जब तुम जाने का मन बना रहे थे तभी मुझे बता देना चाहिए था। मैं अकेले रहने का मन बना लती। पूछने म तो खर तुम्हारी तौहीन होती बता देना चाहिए था मैं औरत जो हूँ न! तुम ठहरे ।'

बोलते बोलते साँस जब भीतर तक खीच ले जाती है प्रीता, तो चेहरा लाल होने के साथ साथ वाक्य भी अधूरा छूट जाता है। पर ऐसा होता तभी है जब वह भीतर की झुझलाहट को बाहर आने स राक लेना चाहती है।

मैं अखबार पढने का अभिनय कर रहा हूँ। हाँ, इस अभिनय ही कहना चाहिए। एक खबर भी पूरी नही पढ़ पा रहा हूँ। प्रीता का अधूरा वाक्य अलग अलग तरह स पूरा होकर मेरे सामने आ खडा होता है कभी वह मेरे पुरुष होने को आहत करता है तो कभी दबती चली आ रही औरत क एकाएक फट पडने के ताप को प्रस्तुत करता हुआ मुझे हिला जाता है। अधूरी छूट गयी बातें पूरी हो गयी बातो से ज्यादा भयावह होती हैं।

निद्वद्व भाव से आलू छीले जा रही यह औरत बोलती क्यों नही? मैं ही कुछ कह पाता!

हथेलियो से आलू के बिखरे छिलके समेटते हुए वह भरी भरी आँखो से मेरी ओर दखती बहुत कुछ कह रही है। शायद मेरी दुविधा उस तक

एक पल मे बहुत कुछ बिजली की गति से मुझ तक आ पहुँचा है।

प्रीता 'कुछ भी कह सकने की स्थिति मे नही पा रहा हूँ खुद को।

समेटे हुए छिलके जमीन पर छोड उठकर वह मेरे बहुत पास आ गयी है। मरी दायीं हथेली उसकी दोनों हथेलियो के बीच दबी है।

अहमदाबाद स लौटकर तुम एक दिन सिर्फ हमारे साथ घूमने चलोगे न! मैं और तुम बस और कोई भी नहीं। बोलो मजूर ?'

'मजूर।

'तो अब उठो, और तैयार हो जाओ। आज दफ्तर भी जाओगे कि नही?'

आलू के छिलको के साथ कितना कुछ बिखरा हुआ पल भर म समेट लिया है प्रीता ने

मैं दुपहरी' के सामने आ खडा हुआ हूँ। कलियाँ फूटने को हैं उनके भीतर का लाल रग बाहर झाँक रहा है।

बगल म आकर खडी हो गयी है प्रीता।

'क्या देख रहे हो?'

'देखो न, दूसरा फूल भी खिलने ही वाला है।'

'सो तो ठीक है, पर इसे लगाकर भूल मत जाना। ध्यान न दिया जाये ता पौधे का भी सूखते ज्यादा देर नही लगती ।'

उसकी यह बात क्या महज पौधे के सबध मे है?

रसाई से प्रीता के गुनगुनाने की धीमी स्वर लहरी आ रही है। मन होता है, कभी वह खुलकर गाय और मैं सुनता रहू। सुनता ही रहूँ।

कई रगा का एक फूल मेरी आँखो मे आकर ठहर गया है मैं इस पौधे को सूखने नही दूगा।

'सुनो, आज मैं खाना नही बनाने वाली। सारा समय तो बातो मे निकल गया ।' उसकी आवाज मे हरियाली गन्ध लहरा रही थी।

अधिकार और खुशी स सराबोर उसका यह कहना मुझे भर गया है हल्की बरखा के बाद मिट्टी से उठी सौंधी गन्ध की तरह।

किरचें

ज्ञानप्रकाश विवेक

गर्मी के दिन और दस ग्यारह का वक्त ! ऐसा लगता था आग बरसने लगी है। मैं भीतर कमरे म था, किताब पढ़न म व्यस्त। गली से कोई गुजरा था एक हाँक-सी लगाते हुए—चारपाई बुनवा लो चारपाई खाट म बान बुनवा लो ।

हमारी कालोनी मध्यम वर्गीय लोगो की है और एसे चलते फिरते दुकाननुमा लोग दिन म कई गुजर जात हैं। मैं फिर किताब पढन लगा था। एक खीझ सी भी उठी थी जेहन मे—साले दिन भर डिस्टब करत रहते हैं। कभी पुराने जूत और पुरान कपडो के बदले बतन या आकरी वाले, कभी सूखा जीरा-धनिया वाले, कभी दरियो चादरो वाले और अब चारपाई बुनने वाले भी निकल पडे गलियो म।

मेरी खीझ पूरी तरह रास्ता बनाकर बाहर नहीं निकली थी। पिताजी ने दरवाजा खोलकर उसे दूर स बुलाया था। वह गलरी तक चला आया था, मैं अब भी भीतर कमरे म था और पिताजी पर गुस्सा रहा था जिस तिस को बुला लेत हैं। जब से रिटायर हुए हैं एस लोगो को घर बुलाना और मोलभाव करना कुछ ज्यादा हो गया है।

पिताजी पूछ रहे थे, 'हमने चारपाई बुनवानी है कितने लोगे ?

जी पहल चारपाई दिखाओ और बान भी।'

क्यूं चारपाई और बान स क्या मतलब ?'

मतलब है साब ! छोटी-बड़ी चारपाई देखनी है और बान कैसा है यह भी मालूम हो जायगा।'

पिताजी न उस चारपाई लाकर दिखायी थी और बान का एक गोला भी। और बोल थ ऐसा मुलायम बान कभी तून देखा भी नहीं होगा।' फिर कुछ रुककर बोल कितन लगा ?

जी बीस रुपय। उसन सोचत हुए कहा।

'बीस रुपये ? बहुत हैं भई।' पिताजी चौंके। मैं मन ही मन बोला—और बुलाओ ऐसे लोगों को।

कुछ पल चुप रहने के बाद उसने कहा, 'बडी खाट है साब, साढ़े तीन किलो बान तो लग ही जायेगा। छ रुपये किलो के लेते हैं, इक्कीस हुए आप बीस दे दना।'

'बारह रुपये दूगा।' पिताजी ने पत्थर लुढका दिया शब्दों का।

'नइ साब बोत कम हैं।'

'तोऽ ?' शायद पिताजी को लगा था कि कम दे रहे हैं।

अन्तत सौदा सोलह रुपय पर हुआ था। और वह उलझे हुए बान को सीधा करने में जुट गया। फिर सहमते हुए बोला, 'साब, दिक्कत न हो तो इसी गैलरी म चारपाई बुन दू। बाहर बहुत धूप है।' अन्तिम वाक्य मे उसने सफाई सी दे दी थी।

'सामने उस दीवार की छाँव मे बैठ जा।' पिताजी ने बेरुखी से कहा।

'साब वो छाँव तो अभी चली जायेगी।' वह कुछ निराश होकर बोला।

'ठीक है यही बुन ले।'

इतवार था, बच्चो की छुट्टी थी। उनके लिए यह चारपाई बुनना मनोरजन था और चारपाई बुनन वाला एक तमाशा।

बच्च उसके गिद जमा हो गय थे। उसने किसी बच्चे से पानी मगाया था। सारे बच्चे हस पडे थे। एक शतान सा बच्चा बोला, 'भाई, तुझे प्यास भी लगती है?'

उसने कहा, 'हाँ।' बच्चे फिर हँसे।

फिर दूसरे बच्चे ने पूछा, 'तुझे भूख भी लगती है?'

उसने कहा, 'हा।' बच्चे फिर हसे।

तीसरे न कहा, 'तुझे भूख लगे तो यह बान खा लिया कर।

सब बच्चे ठठाकर हँस पडे।

मैंने किताब बन्द कर दी। मुझे बच्चा पर गुस्सा आने लगा था। गरीब का मजाक उडाना अच्छी बात तो नहीं।

उसन घर के किसी और सदस्य को पानी के लिए कहा था। पिताजी ने उसे पानी पिलाया। फिर वही खड़े होकर पूछने लग, 'कब स कर रहा है य काम ?'

'सात-आठ साल से बाबूजी। इसस पैले फैक्टरी म था। वो बन्द हो गयी तो ये काम शुरू कर दिया।

'महीने का कितना बन जाता है तरा ?' पिताजी उस कुरेदने लगे थे। पिताजी की ऐसी सवदनाएँ मुझे अच्छी नही लगतीं। क्या पता वह बताना चाहता है या नहीं ?

'कभी कम, कभी ज्यादा। कोई बँधी हुई कमाई ता है नइ दाबूजी। कई-कई वार तो तीन-तीन दिन तक कोई चारपाई बुनने को नइ मिनती। कभी दिन म दो दो चारपाइयाँ बुनने को मिल जाती हैं। बस गुजर-बसर हो जाती है। कभी कभी तो ऐसा भी होता है ।' इतना कहकर वह चुप हो गया।

उसे चुप देखकर पिताजी ने पूछा, 'क्या होता है ?'

'यही कि आटे का कनस्तर भी खाली होता है और जेब भी।' एक दीघश्वास छोड़ा था उसने। मैंने कमरे मे बैठकर महसूस किया था उसके दद का। किसी के दद को कमरे मे बैठकर महसूस करना, जहाँ पखा चल रहा हो, महानगरीय सिंथेटिक अदा भी हो सकती है। वह बाहर गर्मी म था, बात को सुलझा रहा था और मैं दीवार के इस ओर उसके दद को महसूस कर रहा था मुझे लगा मेरे भीतर उपजा यह दद भी एक प्रकार का छद्म है।

पिताजी ने उससे पूछा था, 'क्या नाम है तेरा ?'

'सूरज सूरजप्रकाश !' उसने अपना नाम बताया।

नाम मैंने भी सुना। चौंक-सा गया।

सूरजप्रकाश ! यह नाम मेरी स्मृति की खिडकी खोलकर भीतर चला आया। एक सूरजप्रकाश हमारे साथ भी पढता था, उसे हम सरजू कहते थे लेकिन चिढाने वाले लहजे मे सनलाइट भी कहा करते थे। कहीं यह वही तो नही ? मैंने सोचा। लेकिन दिमाग ने मेरे विचार को झटक दिया—ससार म सूरजप्रकाश नाम के और लोग भी तो हो सकते हैं। सूरजप्रकाश अकेला वही तो नही था जो मेरे साथ पढता था। मैं इसी उधेडबुन म लग गया था।

पिताजी की आवाज आयी, अच्छा नाम है सूरजप्रकाश, अच्छा नाम है।

'हा साब नाम तो अच्छा है पर लोग मुझे सूरजप्रकाश नही कहते।'

'तोऽऽऽ ?'

सरजू कहते हैं।'

मैं फिर चौक पडा। किताब एक ओर पटककर उठ खडा हुआ। मुझे उसका नाम ही नही आवाज भी कुछ कुछ पहचानी सी लगी। तब भी ऐस ही होता था वाक्य के अन्त तक आते आते उसकी आवाज मरने लगती थी। वह हडबडाकर वाक्य पूरा कर देता। कभी कभी तो उसके शब्द भी लडखडा जाते थे—इसी बौखलाहट म। इस सरजू के वाक्यो को मैंने सुना था और महसूस किया था। वह शुरू मे बात करते वक्त सामान्य-सा होता है किन्तु अन्त तक पहुँचते-पहुँचते शब्दों को एक साथ लुढका देता है जैसे शब्द न हो पत्थरो का ढेर हो।

मैं दबेपाँव गलरी तक आया था। एक उत्सुकता भी थी, एक आश्वस्ति भी थी, एक शका भी थी। मैं लगभग तय कर चुका था कि वही सरजू है यह। वही सरजू जो हमारे साथ पढ़ता था।

गैलरी से पहले, स्तभ की आड लेकर मैंन उसे देखा था। वह उलझे बान को सुलझाने म उलझा हुआ था। मैं उसे देर तक देखता रहा, वही धंसी आखें, लम्बी नाक बाहर को निकला माथा, सँवलाया चेहरा—कुछ वक्त की धूप म, कुछ भूख के सहरा म। माथे के पास वही चोट का निशान! मैं स्मति म डूब गया उसकी चोट का निशान दखकर—वही सरजू! भुखमरी से जूझते घर का एक बालक! और अब भी उसी भूख की जग मे मसरूफ!

मैंने उसके हाथ दखे। जसे हाथ न हा, मशीन हो। बडी तेजी से बान को सुलभा रह थे और गोला बना रह थे। दा माटे माट गोले बनाकर उसने चारपाई को बुनना शुरू कर दिया था। एक वार को वह खडा हुआ, चारपाई के गिद एक परिक्रमा सी पूरी की। खड होने, चारपाई का देखन परखने और अपना नाक सुडकने की कलाबाजियो क बीच एक बार उसने मुझे देखा और फिर चारपाई म बान के गिरह डालन लगा। जिन्दगी की मुठभेड ने उस शायद फुर्सत ही नही दी थी कि वह भरपूर नजरो से मुझे देखे। या यह भी हो सकता था कि वक्त की मार न उससे एकटक देखत रहने की कुव्वत छीन ली हो।

लेकिन मैं उस देखता रहा था। सिर्फ उसे नही, उसके समूचे शरीर को। शरीर शरीर कहाँ था? जिन्दगी के अकुशल मिस्त्री ने शरीर को घड दिया था जसे।

उसन एक बार फिर मुझे देखा था—कुछ इस भाव से कि मैं वहाँ क्यो खडा हूँ, कि मैं उसे क्यो देख रहा हूँ, कि मैं उसके काम मे बेवजह दखलदाजी क्यो कर रहा हूँ?

वह तीसरी बार मुझे देखने लगा था किन्तु पलकें उठा नही पाया था। जसे वक्त के शातिर हाथो ने उसकी पलका पर पत्थर बाँध दिये हों और पलकें उठन स पहले झुक गयी हो या जैसे किसी ने खीचकर नीचे गिरा दी हों।

तब भी, हाँ तब भी वह नजरें उठाकर किसी को देर तक देखने की हिम्मत नही जुटा पाता था, जब वह हमारे साथ पढ़ता था। वह सदैव हीन भावना से ग्रस्त रहता था। उसका शरीर बेडौल था। उसके शरीर का प्रत्येक अग बदसूरत था। बस एक चीज उसकी हम अच्छी लगती थी—उसके लम्बे पतले हाथ और उन पर उगी हुई पतली पतली लम्बी उगलियाँ! अब उसके हाथ कितने खुरदर, कितने भद्दे नजर आ रहे हैं।

मेरा मन हुआ उसे बुलाऊँ पहचान कराऊँ। लेकिन मैं सोच मे डूब गया था कहीं झेंप तो नहीं जायेगा कहीं शर्मिन्दगी तो महसूस नहीं करने लगेगा यह सोचकर कि मैं अपने भूतपूर्व सहपाठी के घर चारपाई बुनने आया हूँ? कहीं वह मेरी सम्पन्नता स सहम तो नहीं जायगा? नहीं उसे यथावत् काम करने दूँ। उस अतीत की याद दिलाकर उसके तन्तुओ को झिझोडना ठीक नहीं होगा। उसका

स्वाभाविक स्वरूप बिगड जायेगा। उसके वर्तमान की चट्टान दरक जायगी ।

वह था चारपाई थी, बान था इधर मैं था, स्कूली यादें थी, तब का सरजू था सरजू—सहमा हुआ मुफ़लिसी के बीजगणित को समझता हुआ आँखो मे उदास सी गद लिय और चहरे पर किसी निजन टापू का खोयापन लिये हुए ।

□

वह हमारे साथ पढता था। हमारे मोहल्ले म रहता था। हम सगी साथी हसते खेलते, चुटकुले सुनाते, ठठाकर हँस पडते, वह चुप रहता या फिर उदासी के चीथडो मे लिपटी हुई मुस्कान मुस्करा देता। हम उसे चिढ़ाते, सडियल सरजू, कभी हस भी पडा कर।

तब वह हम अपनी निधनता क हिज्जे समझा पाने म असमथ था और हम समझन म।

क्लास म भी वह आखिर म बैठता और अक्सर उस सजा मिलती। कभी कापी नही होती थी कभी किताब। एक ही बहाना—कल ले लूगा मस्साब आज माफ कर दो। लेकिन सारे मस्साब उसकी मजबूरी स अपरिचित थे। बेचारा सरजू घर की जजर अवस्था को ढोता छिपाता, स्कूल म कापी किताबो के लिए बहान बनाता और सजा पाता। कभी डडे पडते, कभी बैंच पर खडा होता तो कभी बाहर धूप म।

एक दिन स्कूल स वापिस आते हुए हमम से किसी न कहा था 'सरजू तरे हाथ तरसते रहते हैं मार खान के लिए साले तू सारी कापियाँ किताबें खरीद क्यो नही लेता ?'

ऐसा लगा था जस किसी डरावने खण्डहर म कोई चमगादड उडा हो, पख फडफडाये हो, एस शब्द फूटे थे सरजू के। उसकी ही नही उसके शब्दो की आँख भी डबडबाई हुई थी— तुम तो तुम तो ऐस कहत हा जस कि मुझ पिटन का शौक हो कौन चाहता है हर रोज कक्षा म बेइज्जती हा पनिशमट मिल तुम तुम्हे तुम्हें क्या बताऊँ ।' आग के शब्द वह बोल नही पाया था। गला रुध गया था उसका।

उसके पिता किसी प्राइवेट कम्पनी म चपरासी थे। घर म अभावो के बबूल थे पाँच बच्च चार भाइ एक बहन। सरजू का दूसरा नम्बर था। बडा भाई किसी फैक्टरी म नौकरी करता था। हम जब भी उस दखत वह कुछ बुनता उधडता नजर आता। हमशा दीवार क साथ पीठ टिकाय शून्य म सवालों को हल करत हुए। सरजू के छोटे भाइ थ—हमेशा लडत झगडत, रोत-पीटत। पिता थ, किसी परशुराम की भाँति सदव गुस्साए हुए यही हाल माँ का था। जब उस अभाव सताते वह बच्चों को पीटती, जब बाहर गली-पडोस म कोई झगडा होता तो

वह बच्चो को पीटती। यानी अपनी तमाम कुंठा बच्चा को पीटकर उतारती। पूरे का पूरा घर हम भयावह लगता लेकिन उस घर मे सरजू की बहन हमे तपे-झुलसे माहोल मे शीतल छाँव जैसी महसूस होती। हम उसे दीदी कहते थे। सरजू से हम चिढे से रहते थे, लेकिन उसकी बहन यानी हमारी दीदी, उसक लिए हम सरजू के घर जाते। वह उम्र मे हमसे दो तीन साल बडी थी। एक तरह स जवान थी। सामान्य रग रूप लम्बी दुबली पतली। लेकिन व्यवहार गजब का था। कई बार ऐसा होता कि माँ से उसका झगडा हो चुका होता, वह माँ स पिट चुकी होती, हम पहुँचते तो वह ऐस खिलखिलाती जैसे दिन भर ठहाके लगाती रही हो। हमारे लिए चटाई बिछाती, हम बिठाती, पानी पिलाती। हमसे चुटकुले सुनती तो खूब हसती।

ऐसी ही एक शाम को हमारी चुटकुला गोष्ठी खत्म हुई थी, हम उठकर चले आये थे सरजू भी साथ था। हमने उस कहा, दीदी बहुत अच्छी है। खूब हँसती-हँसाती है।'

सरजू ने बडी गम्भीरता से कहा, 'जो दीदी तुम्हारे साथ खुलकर हँस हँसा रही थी न, उसे कल रात स रोटी नही मिली।'

क्याऽऽऽ?' हम एक साथ चौक पडे थे।

'हाँ माँ से झगडा हुआ था उसका और माँ ने रोटी नही दी।'

सरजू की बात सुनकर हम सब सन्नाटे से घिर गये थ। दीदी की हँसी के पीछे छुपे दद को हम जरा भी महसूस नही कर पाये थ। हम हैरान थे। भूखा रहकर कोई कस हँस सकता है?

स्कूल म, बाहर, आधी छुट्टी या पूरी छुट्टी मे सरजू हमारे साथ रहता, एक तरह से तो चिपका रहता था हमसे। हम जो खरीदते, उसे भी दते। वह इकार मे सिर हिलाता लेकिन आँखो मे छुपी भूख हाथ फैला दती।

हमने तय कर लिया था इसे एक दिन सीधा करेंगे। बस एक बार हमारी अटी पर चढ गया तो बच्चू उम्र भर याद करेगा। और वह मौका हमारे हाथ बहुत जल्दी लग गया था।

एक दिन वह बाजार की तरफ हमे मिल गया था। हमने उसे रोककर पूछा था, 'कहाँ जा रहा है?'

उसने कटोरी दिखाते हुए कहा, 'माँ ने घी मँगाया है, तीन रुपये का।'

'अबे साले बकवास करता है तीन रुपय का क्या घी आता है? गोलगप्पे खाने जा रहा होगा अकले अकेले।' हममे ओमी सबसे ज्यादा उद्दड था, बलिष्ठ भी था और मुहफट भी, उसी ने सरजू को हडकाया।

ओमी के सामने सरजू की बोलती बन्द हो जाती थी। वह कँपकँपाते हुए बोला, 'नई सच्ची, घी ले जाना है।' एक अप्रत्याशित खौफ उसके चेहरे पर फलने

लगा था।

वेद, लिल्ली, शर्मा, जग्गी, सुभाष, मैंने और ओमी न उस घर सा लिया था। वह चुप था और हम फ़िकरे कस रहे थे। ओमी ने देखा कि हम भी उसका समथन कर रह हैं तो वह पागल भैंस की तरह सरजू पर झपटा और तीन रुपय अपने कब्जे म कर लिए। फिर उसने एलान किया चलो आज सरजू की तरफ स गोलगप्पे खाते हैं। हम गोलगप्पे की रेहड़ी की ओर चल पड़ थे। बेचारा सरजू भौंचक्क सा देखता रहा था हम। किंकर्त्तव्यविमूढ़ सा खड़ा रहा कुछ पल फिर चल पड़ा हमारे पीछे पीछे खाली कटोरा लिए। जैस चल न रहा हो घिसट रहा हो।

'ले तू भी खा!' सुभाष ने गोलगप्पा उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा था। और सरजू की रुलाई फूट पड़ी थी। हमन उसे हड़काया था, इतना बड़ा हो क रोता है। साले मूड बिगाड़ रहा है हमारा!'

लेकिन हमारा ठट्ठा मखौल बड़ा महँगा था उस। वह खाली कटोरी लेकर घर पहुँचा था। माँ न देखा तो दहाड़ी, 'घी कहाँ है?'

'नईं लाया।' सहमा सा जवाब था सरजू का।

'क्यों नईं लाया?'

'पैसे लड़कों ने छीन लिए।'

'और लाटसाब ने पैस दे दिये। यहाँ मैं दाल को छौंक लगान क लिए बैठी हूं। बेटा दोस्तों के साथ अय्याशी कर रहा है।' उसक बाद माँ का गुस्सा उबलत हुए पानी की तरह खौलन लगा था। अंगीठी क पास पड़े चिमटे को उठाकर सरजू पर दे मारा था उसने। चिमटा सीधा सरजू के माथे पर लगा था। जरा सा इधर उधर होता तो आँख नहीं बचनी थी। माथे से खून की मोटी धार बह निकली थी, सरजू तो वहीं का वहीं बैठ गया था। अब तक का दृश्य हम सब बाहर दरवाजे के रोजन से देख रहे थे। सरजू के माथे से खून बहता देखकर हम सब सहम गये थे। कोई नहीं बोला था किसी स। सब अपने अपने घरों को लौट गये थे।

सरजू के माथ पर चोट का निशान देखकर अनायास सारी घटना जेहन म रेखांकित हो गयी पुन। उसने एक बार फिर मुझे देखा है और मैंने उसे। उसकी आंखों का बुझापन एक बार फिर मुझे कहीं अतीत की तलहटियों म उतार ले गया है।

हमारे कस्बे के जनपद म विज्ञान प्रदर्शनी थी। वह प्रदर्शनी हमें दिखाने के लिए हमारी कक्षा का टूर प्रोग्राम बना। हम तो चहक उठे थे। बाहर जाने का, घूमने फिरने का अच्छा मौका हाथ लगा था। कक्षा के इक्यावन विद्यार्थी प्रसन्न थे उदास था तो केवल सरजू! तब हम उसकी उदासी का सबब नहीं समझ पाये थे, जरूरत ही नहीं थी। हम उमंग म थे तरंग म थे। सरजू उदास है हम इसकी खबर ही नहीं हुई थी।

दस दस रुपये लिए गये थे। सबने दिये थे। बस एक सरजू ही था जिसने पैसे जमा नहीं कराये थे। मस्साब ने पूछा था सरजू से, 'क्यू रे तू नहीं चलेगा हमारे साथ ?'

'नइ जी।'

'क्यू ?'

'बस एसे ही।' सरजू के मुख स शब्द टूट थे और विवशता की किरचो की तरह बिखर गये थे।

हम बस मे बैठ गये थे और वह हम बस की खिडकियो स दखता रहा था—अवसादपूर्ण नजरो से। उसकी आँखो के पीछे दद के चीखते काले समन्दर थे और उसके चेहरे पर पसरे हुए थे सन्नाटे, महज सन्नाटे!

बस चल पडी थी और वह बस के पहियो के निशान पर चलता रहा था दूर तक, जहाँ तक कि उस बस नजर आती थी, जहाँ तक कि हमारे हाथ हिलते हुए नजर आते थे, जहाँ तक कि वह बस की रफ्तार का पीछा कर सकता था।

अन्तत एक अकेला हाथ हिलता रहा था शून्य म। वह हाथ सरजू का था। हमारे हाथो म उत्साह के सूरज उग थे, धूप की लकीरें थी और उसके हाथ म मुह चिढ़ाता अँधेरा था।

अँधेरा अब भी उसके हाथो म है। लेकिन किसी महनतकश की तरह वह उस अँधेरे स लड रहा है। तोड रहा है अँधेरे के तिलिस्म को। मैं उस देख रहा हूँ। वह मसरूफ है चारपाई बुनने मे। चारपाई के चारो तरफ घूम रहा है, बैठता है, उठता है और पूरी शिद्दत के साथ लड रहा है अपने साथ जिन्दगी के साथ!

यही लडाई उसकी बहन यानी हमारी दीदी भी लडती रही थी और अन्तत ।

जब स सरजू स धी के पैसे छीनकर गोलगप्प खाये थे, हमारी हिम्मत नही हुई थी कि हम उसके घर जात। सरजू भी कई दिन तक हम नही मिला था। गर्मी की छुट्टियाँ थीं। स्कूल बन्द थ। बाकी मित्र शाम को मिलते लकिन सरजू से मिलना नही हुआ था। एक दिन वह हडबडाते हुए आया था। उसकी आवाज म परिशानी-पन था और आँखो मे भी। हम ओमी के घर बैठकर ताश खल रहे थे। 'क्या हुआ ?' ओमी न पत्ता फेंकते हुए पूछा।

'बहन बीमार है बहुत ज्यादा खून की उल्टियाँ हुई हैं।'

'क्याऽऽऽ ? हमने चौंककर पूछा था। हम जिस दीदी कहते थे वह बीमार थी और हम मालूम ही नही था।

'हाँ खून की उल्टियाँ हुई हैं। डॉक्टर के पास ले गये थ पिताजी। उसने पन्द्रह रुपय फीस के लिए और बहुत सारी दवायें लिख दी हैं।'

'तो दवायें ली हैं या नही ?' ओमी ने पूछा। उसन ताश क सारे पत्ते पटक

दिये थे।

'नह।'

'क्यो ?' तल्खी से पूछा था सुभाष ने।

'पिताजी डॉक्टर को जो पन्द्रह रुपये फीस दे आय हैं, उसका गुस्सा नही उतर पा रहा ऊपर स ये दवायें ?'

'तो दवायें नही लेंगे ?'

दीर्घश्वास लेकर सरजू बोला, 'तुलसी के पत्ते डालकर चाय पिला दी है।'

'लेकिन दवायें ?'

'डॉक्टर कहता था डेढ़ सौ रुपये के करीब लगेंगे दवाओ पर।'

'तोऽऽऽ ?'

पिताजी माँ से कह रहे थे डेढ़ सौ रुपय मे तो दस किलो आटा, दो किलो चीनी, दो किलो घी और हफ्ते भर का फुटकर सामान खरीदा जा सकता है।'

'लेकिन दीदी को कुछ हो गया तो ? वेद विचलित होकर बोला।

'पिताजी को छुटकारा मिल जायेगा।' एक ठण्डा सा जवाब दिया था सरजू ने।

ओमी उठा था। बिना कुछ बताये कमरे मे घुसा था। रैक मे पडी किताबें उलट पलटकर एक किताब निकाली थी। उसमे नोट थे—साठ रुपये।

'सरजूऽऽऽ', अकुलाकर बोला ओमी, 'जा जल्दी से तू दवाइयो वाली पर्ची ले आ भागकर जा कुछ तो दवाइयाँ आ ही जायेंगी।'

जब तक सरजू आता हम अपने-अपन जेब खर्च उठा लाये थे। एक सौ पसठ रुपय थे हमार पास। ओमी ने कहा, 'तुम सब लोग दीदी के पास जाओ मैं दवाइयाँ लकर आता हूँ।'

दीदी चारपाई पर पड़ी थी। हम उसकी चारपाई के पास बैठ गये थे—चुप चाप। वह निर्निमेष हम देखती रही थी। दीदी की दो आँखें ऐसे लग रही थी जैसे जिन्दगी के मरुस्थल म पडी हो—प्रतीक्षारत।

इस बार हमारी गोष्ठी म कोई चुटकुला नही था, कोई ठहाका नही था। बस था तो कवल चुप्पी, सिर्फ उदासी, पीड़ा।

हमारी आत्मीयता, हमारा स्नेह, हमारा प्यार, दीदी के प्रति श्रद्धा, सारे भाव हमारी आँखो के कोर के पास ठिठक गये थे। हमारे शब्दो म सच्ची भावना थी, दुलार था, कमजोर पड़ता आत्मविश्वास था— दीदी, तुम ठीक हो जाओगी हाँ दीदी हमारा मन कहता है, तुम जरूर ठीक हो जाओगी।'

लेकिन चारपाई पर पड़ी दीदी ने एक बार करवट बदली थी, थोड़ा उछली थी, शरीर म ऐंठन-सी हुई थी और गले स हिचकी की आवाज वही हिचकी जिन्दगी स बँधी डोर का तोड़ गयी थी। लुढ़क गयी थी दीदी एक ओर ओर हम

सब सन्नाटे को पीने लगे थे।

ओमी आया था, बड़ा सा लिफाफा था उसके हाथ में दवाओं और टीकों का। दूर खड़ा हुआ था, जैसे समझ गया हो सारी वास्तविकता। वहीं जमकर खड़ा रहा था—शिलालेख सा। दीदी नहीं रही थी जो उसके लिए चटाई बिछाती, उसे बिठाती दीदी तो मर चुकी थी। दीदी की दवायें ओमी के हाथ में थी।

ओमी घर से बाहर चला गया था। कुछ देर बाद हम भी बाहर आये थे। बाहर का दृश्य देखकर हम ठगे-से खड़े रहे थे। ओमी पत्थर उठाकर कैपसूल और टीकों को चूर-चूर कर रहा था, उसकी आँखों में आँसू थे, हाथों में पत्थर और जमीन पर बिखरे हुए कैपसूल, टीकों की शीशियाँ, उनकी किरचें हम सब व किरचें देख रहे थे। लग रहा था जैसे वे किरचें जमीन पर नहीं पड़ी, हमारे भीतर उग खड़ी हुई हैं।

□

वही किरचें मुझे सरजू की आँखों में नजर आयी हैं। सम्पन्न लोगों के सपने आकार पाते हैं कि तु निर्धन के सपने किरच बनकर चुभते रहते हैं आँखों में उभरकर।

वह चारपाई बुन चुका था। तीन साढ़े तीन घण्टे लग गये थे चारपाई बुनने में। चारपाई बुनकर वह खड़ा हुआ था। माथे पर चुचुआये पसीने को अपनी कमीज की आस्तीन से पोंछकर तनिक आश्वस्त हुआ। गर्मी, तपिश और थकान के बावजूद उसके चेहरे पर तसल्ली की लकीरें थीं, जैसे मेहनतकश के चेहरे पर होती हैं—काम निपटा चुकने के बाद।

चारपाई के चारों कोनों से खड़े होकर उसने चारपाई का मुआयना किया था, किसी आलोचक के नजरिये से। आश्वस्त हो चुकने के बाद उसने आवाज लगाई, बाबूजी चारपाई तयार है।'

पिताजी ने चारपाई देखी तो उसने पूछ लिया, 'बाबूजी कैसी बुनी है ?'

'अच्छी है बहुत अच्छी है। ठहर मैं पैसे ले आता हूँ।' पिताजी पैसे उठा लाये थे। पैसे देते हुए उन्होंने पूछा, तूने दोपहर को रोटी भी नहीं खायी, यहाँ खायेगा रोटी ?'

'नईं साब।'

'अरे खा ले भूखा होगा तू भूख तो लगी होगी तुझे। हम सब भी खा रहे हैं तुझे यहीं भिजवा देता हूँ।'

वह फीकी-सी मुस्कान के साथ बोला भूख तो लगी थी साब लेकिन पैसे नईं थे। अब पैसे मिल गये हैं। बाजार से खा लूँगा।'

'अरे यहीं खा ले।'

'नई साब, अपना असूल है।'

'क्या?'

'मैं मजदूरी लेता हूँ अनुदान नही।'

मैंने उस चौंककर देखा। उसकी आखो मे चमक देखी थी मैंने—पहली बार चमक और चेहरे पर आत्मविश्वास! पहली बार वह तनकर खडा हुआ था। उसका आत्मविश्वास और तनकर खडा होना मेरे लिए अद्भुत था। वह जाने लगा था, उसने मुझे आखिरी बार दखा जैस आंखो से प्रश्न पूछ रहा हो—बहुत बड़े आदमी बन गये हो, क्या इसीलिए नही पहचान रहे मुझे।

माती

☐ सुनील कौशिश

माती बरामदे मे घूम घूमकर चिल्ला रही है। बीच बीच मे वह हाथो को नचा लेती है और हिलने डुलने से बार-बार नीचे को खिसक आये धोती के पल्ले को सिर पर रख लेती है। माती के बक बक करने और जोर-जोर से चिल्लाने की आदत से सभी वाकिफ हैं। घरवाले भी, मुहल्ले वाले भी। माती की कर्कश आवाज जब घर की दीवारो को पार करती हुई मुहल्ले वालो के कानो मे पहुँचती है तो वे लोग अजीब सा मुह बनाकर बुदबुदाया करते हैं—'क्या रोज-रोज का तमाशा है ?' घर के लोग भी इस आवाज को सुनकर अनसुन और बेसुध से अपने-अपने कामो मे लगे रहते हैं बदस्तूर। माती जब तक कान पर आकर नही चीखती, कोई उस तरफ खास तवज्जो नही देता। उसे ऐसा करने मे खासतौर पर बडा सुकून मिलता है।

वह अभी बिस्तर मे पड़ा है। सुबह के साढ़े आठ बज गये हैं। दोपहर की पाली की ड्यूटी खत्म करके वह रात के बारह बजे के लगभग घर लौटा था। माती की आवाज से उसकी नीद उचट जाती है। उसे माती पर बेहद गुस्सा आता है। रोज चख चख मचाये रहती है। सुबह ही सुबह महाभारत शुरू कर दिया। घर न हुआ साला, नौटंकी हो गयी। दो घडी भी चैन नही लेती। आखिर कब वह वक्त आयेगा जब माती चैन से बैठेगी। उसका मन होता कि माती से कहे अब तुम्हारी उम्र पीढ़े पर बैठकर रामायण की चौपाइयां पढ़ने की हो गयी है। सुबह ही सुबह गंगा नहा आया करो और थोडा राम का नाम जपा करो। दुनियादारी के ये सब झंझट छोडो अब। माती का चेहरा आँखो मे आते ही उसकी रूह कॉप जाती है। वह भला क्या कहेगा माती से। पिताजी की ही हिम्मत नही हुई आज तक जो कुछ बोलें।

पिताजी बरामदे मे मूढ़े पर धँसे पड़े हैं। मुह लटकाये, आँखें नीची किये व समाचार अपने दाहिने हाथ के अँगूठे को तर्जनी के चारो ओर घुमाते जा रहे हैं।

पिताजी कल रात ही गाँव से लौटे हैं। गाँव की बची खुची जो जमीन रह गयी है, वह टेसू वाला बाग ही है। बाग भी कहाँ रह गया है अब। मुश्किल से बारह चौदह पेड़ हाग। कुछ पेड़ आँधी, तूफान म गिर गये, कुछ गाँव वालो ने काट डाले। इसी जमीन का सौदा तय करके पिताजी लौटे हैं। जमीन बेचने का अपना इरादा उन्होने माती का नही बताया था। इसी बात का लेकर माती सुबह स उबाल खा रही है और तमाम घर सिर पर उठाये हुए है। माती की तेज आवाज उसके कानो से टकराती है।

'मैं पूछती हूँ जमीन बेचने की बात तुम्हारे दिमाग म आयी किसलिए ? मुझसे पूछे बगर सौदा भी कर आये।'

मुनिया की शादी करूँगा। इसी बरस जाडो म। बस जमीन बिक लेवे।'

'मुनिया की शादी की चिन्ता करने की जरूरत नही है तुम्हे। उसके लिए मैं बैठी हूँ अभी। जमीन नही बिकेगी। सुन लिया न।'

'चौबीस साल की हो गयी लडकी। कब तक घर मे बैठी रहेगी। तुम क्या करोगी मुझे मालूम है। गुड्डी के लिए क्या किया तुमने ? ये जो इतना पैसा अपने नाम से दबाये बैठी हो, साथ लेकर नही जा पाओगी ऊपर। अब एक य ही जिम्मेदारी रह गयी है मेरे सर पर। इसे पूरी करके ही चन स बैठूँगा।'

'कह देती हूँ जमीन कतई नही बिकेगी। गुड्डी की बात मुझस न किया करो। वह भी बदजात। नाक कटानी थी खानदान की सो कटा गयी।

'जमीन भी छाती पर लेकर जाओगी ऊपर। ये ही तो रह गयी है मेरे पास। इसे बेचूगा अब मैं।'

देखती हूँ, कसे बेचते हो ?'

पिताजी चुप हो गये। माती बडबडाती हुई रसोईघर मे चली गयी। वह उठकर आँगन मे निकल आया। चोर निगाहो स पिताजी की ओर देखा। वे बुत बने बठे थे। माती के बडबडाने की आवाजें अभी भी उसके कानो म आ रही थीं। वह बाथरूम म घुस गया।

☐

उसे याद है बचपन म बहुत शैतानियाँ करता था वह। राधेलाल मिडिल स्कूल म पढता था तब वह। स्कूल में रोज कोई न कोई हगामा जरूर करता। कभी किसी की किताब फाड डालता और कभी किसी की दवात उड़ा देता। स्कूल की छुट्टी होते ही सीधा मैदान म भाग जाता। थोडी दर वहाँ कचे खेलता, झगडा-फसाद करता। फिर जब जोरो की भूख लगती तो घर लौटने का होश आता। घर पर उसकी शिकायतें आती थी। माती खूब मारती थी। वह माती की मार से बहुत डरता था लेकिन फिर भी अपनी हरकतें छोड़ता नही था। घर म

उसका मन नहीं लगता। माती बेगार के काम बहुत कराती थी। दोपहर मे खुद तो सो जाती, उसे और गुड्डी को हुक्म मिलता कि दोनो बारी बारी स पखा खीचें। छत मे एक लकडी का तख्ता लटका होता था जिस पर कपडा बँधा होता था। उसी के बीच से एक रस्सी बँधी होती थी जिसे खीचना होता था। थोडी देर खीचने पर हाथ दुखने लग जाते थे। वह भरी दुपहरी मे किवाड खोलकर बाहर भाग जाता और मुहल्ले के लडको के सग नदी पर नहाने पहुँच जाता। नदी पार कर खेतो स ककडी, खरबूजे, तरबूजे तोडे जाते और खाय जात। कभी जामुन तोडे जात ता कभी शहतूत। उसक पाजाम की जेब म गुलेल और छाट छाट पत्थर भर होते। घर लौटकर आन पर माती उसकी डण्डे स खबर लेती। वह भी ढीठ होता गया। मार की परवाह नही करता। पिताजी के पास शिकायत पहुँचती तो वे बस इतना ही कहते माती से—'शैतानियाँ करने की उम्र है। अब नही करेगा ता क्या बुढाप मे करेगा। छोटी छोटी बातो पर क्यो खामख्वाह मारती हो।'

पिताजी बहुत सीधे और सरल स्वभाव के शख्स रहे। धम कम म उनकी खास रुचि रही। घर के मामलो म उनका दखल जरा भी नही रहा। कानूनगो की अपनी नौकरी के सिलसिले म अक्सर ही उन्ह दौरो पर जाना पडता था। पिता बहुत प्यार करत थे दोनो को। मुनिया तब बहुत छोटी थी, शायद पैरो परो चलना सीख रही थी। हर साल दशहरे के मले पर पिताजी दोनो का मले म घुमा लात थे।

बाबा तब यहीं रहा करते थे। सारा दिन अपने कमरे में बने रहते। सुबह और शाम छडी लेकर कम्पनी बाग तक घूम आत या अपने वक्त के दोस्तो के साथ शतरज खेलन बठ जात। रिटायड जिन्दगी के क्षण, एकदम खाली खाली, बुझे बुझ से। बाबा उस बहुत लाड करते थे। अपन साथ घुमाने भी ले जात थे कभी कभी। रास्ते भर उस बताया करते कि सुबह ही सुबह घूमने क क्या क्या फायदे हैं। रात मे अक्सर ही उसे अपने पास बुला लेते और कहते, बेटा, जरा मेरी कमर तो खुजला। वह कमर खुजाता जाता और बाबा उसे परियो और राजा-रानियो की कहानियाँ सुनाया करते। बाबा उस बहुत अच्छे लगत। बाबा क छोटे मोटे काम वह ही किया करता। माती को यह सब अच्छा नही लगता था। उन दिनो भी माती के चीखने-चिल्लान की आदत बदस्तूर थी। वह उसे बाबा के पास जाने क लिए मना करती थी। वह मौका मिलने पर बाबा के कमरे का चक्कर लगा आया करता।

माती सारा दिन नौकरा पर चीखती चिल्लाती रहती थी। बाबा का शोर-शराबे से बेसाख्ता नफरत थी। पिताजी ढूढकर नौकर लाते थे लकिन वह बीस-पच्चीस दिनो स ज्यादा घर म ठहर नही पाता। एक बार कालीचरन नाम क नौकर को माती ने कोठरी म बद कर दिया था। उस गरीब का कसूर इतना ही था

कि धूप मे रखने के लिए अचार का बड़ा मर्तबान उठाते वक्त उसके हाथ से छूट गया था और उसके कई टुकड़े हो गये थे। पन्द्रह सोलह बरस का लड़का था वह। सारा दिन कोठरी में बंद रहा। शाम को उसे बाहर निकाला गया। मर्तबान के पैसे उसकी तनखवाह से काट डालने की धमकी दी मांती ने। रात भर वह घर पर ही रहा। सुबह होते ही वह भाग गया। ऐसे ही एक नौकर को मांती ने तड़ातड़ चाँटे मार दिये थे। बिस्तर लगाते वक्त बेडशीट में कुछ सलवटें रह गयी थी। दो दिनों बाद वह भी निकल भागा। इस तरह कितने ही नौकर आये और चले गये। पिताजी परेशान थे। फिर बाद में यह घर इस बात के लिए बदनाम हो गया कि इस घर की मालकिन एक जालिम और क्रूर औरत है। नौकर तो यूँ ही नहीं मिलते थे। पिताजी ढूँढ-ढाँढकर कोई ले भी आते तो उसे भड़काने का काम मुहल्ले वाले एक दो दिन में ही पूरा कर देते। इससे पहले कि मांती उसे अपना क्रूरपन दिखाये, वह रफूचक्कर हो जाता। नौकरों का काम उसके और गुड्डी के सिर आ पड़ता। उसने हमेशा महसूस किया कि मांती का व्यवहार अपने बच्चों और नौकरों के साथ एक जैसा ही है।

हैंडपम्प के नीचे मांती एक बड़ा हंडा रख देती और उसे आर्डर मिलता कि वह उसे पूरा भर दे। उस पीतल के हंडे में बारह बाल्टी पानी आता था। उसे मालूम था घंटे भर नल चलायेगा तब कहीं जाकर वह भरेगा पूरा। वह उचक-उचककर हैंडपम्प चलाता और थोड़ा ही देर में हाँफ जाता। मांती चिल्ला पड़ती, 'खाता है ठूँस ठूँसकर। काम करते तेरी दादी मरती है।' दादी को मरे कई बरस हो चुके थे। दादी के मरने वाली बात उसे अच्छी नहीं लगती। गुड्डी उससे थोड़ा बड़ी थी। स्कूल जाती थी और सारा दिन घर के कामों में जुटी रहती थी। कभी उससे परांठा या सब्जी वगैरा जल जाती तो मांती उसके बाल पकड़कर खींच लेती और उसका सिर रसोईघर की दीवार में टकरा देती और बकने लगती, 'कहाँ ध्यान लगा रहता है तेरा। जिस घर में जायेगी, वहाँ भी ये ही सब करेगी। थोबड़ा तोड़ दूँगी तेरा।' और कभी-कभी वह उसकी कमर में बेलन या चिमटा जड़ देती। गुड्डी बिलबिला पड़ती। बाबा शोर सुनकर अपने कमरे से निकल आते और मांती से कुछ कहते तो उन पर भी बरस पड़ती। बाबा चुपचाप वापस लौट जाते। ऐसे ही छोटे छोटे कामों में गलती हो जाने पर उसे भी मार पड़ती थी।

मांती बाबा से बहुत चिढ़ती थी। एक मर्तबा बाबा ने अपने किसी दोस्त से कहा था पिताजी के लिए— मेरे तीन लड़कों में बस एक ये ही जनखा किस्म का पैदा हुआ है। चुप खड़ा जोरू के करतब देखता रहता है। दो लात जमा दे कसकर। सब तेवर ढीले हो जाएँ। नहीं होता ये सब तो साले खाओ जोरू की गालियाँ और मरते रहो जिन्दगी भर।' यह बात घूम फिरकर मांती के कानों तक पहुँच गयी थी। अब तो मांती और भी ज्यादा चिढ़ने लगी थी बाबा से। एक दिन

न जाने क्या बात हो गयी थी, माती ने आगन म खडे होकर बाबा का बहुत खरी-खोटी सुनायी थी चीख चीखकर। दो दिन बाद पिताजी दौरे से लौटकर आये। बाबा ने अपना सामान बाँध लिया और घर के अदर आकर पिताजी से बोले, 'बेटा बस बहुत हो गया। अब मैं यहाँ नहीं रहूँगा। और बाबा चल गये ताऊजी के पास। पिताजी कुछ भी तो नही बोले, उनके जाते वक्त। माती के रवये स व मन ही मन बहुत दुखी रहत थे। माती स छुपाकर व बाबा का लगातार रुपय भेजते थे।

माती उन दिनो बडे लटके से रहती थी। बढिया स बढ़िया कीमती साड़ियाँ पहनती थी। सिंगार भी खूब गजब का करती थी। चेहरे पर पाउडर की मोटी पत जमाती थी, शायद अपन साँवलेपन को ढाँपने के लिए। गहरे लाल रग की लिपिस्टिक माथे पर चौडी बिंदी लगाकर वह पूरे मुहल्ले का चक्कर लगा आती थी। इसी साज सिगार म वह मुहल्ले की औरतो के सग हर हर महादेव फिल्म देख आती थी। पान खान का उस शुरू से ही शौक रहा। साधु सतो की बातो पर उसे ज्यादा विश्वास रहता है। उन्ह वह अक्सर ही मौके बेमौके खिलाती रहती। उस याद है माती उसकी और गुड्डी की दाल म एक एक चम्मच घी डालती और साधुओ को खिलाते वक्त उनकी दाल मे एक-एक बडा चम्मच घी डालती थी। साधुओ के कहने पर ही वह अक्सर पूजा, हवन व सत्यनारायण की कथा आदि कराती रहती।

गुड्डी ने इण्टर पास कर लिया था। आग पढ़ने के नाम पर माती ने फुलस्टाप लगा दिया। उसका कहना था, नौकरी करानी नही है। जब चूल्हा चौका ही फूँकना है तो पसे जाया किसलिए करें? पढने लिखने मे उसका क्तई मन नही लगता। बुद्धि भी उसकी ज्यादा तेज नही थी। हाईस्कूल म फेल होत जान का उसका यह तीसरा मौका था। पहले बरस जब इम्तहान दिया था तो तीन विषयो म अडन्न जीरो मिला था। दूसरे साल हाजरी कम होन की वजह से इम्तहान म नहीं बठ पाया था। महीनो स्कूल नही जाता था। अलबत्ता घर से किताबें लेकर रोज निकलता था। सारा दिन इधर-उधर घूमता रहता। उन दिनो फिल्म खूब देखता था। 'नदिया क पार, नवाब', मिर्जा गालिब, बसन्त बहार तो उसे खूब याद हैं अभी भी। गाने की किताबें भी उसके पास पूरी पचास थी। तलवारो की लड़ाई वाले सीन उस बहुत अच्छे लगत थे। उन दिनों नलत महमूद का सितारा बुलन्दी पर था। बहुत गान याद थ उस। उसकी आवाज भी बहुत अच्छी थी उस वक्त। रामलीला की झाँकियो म वह खूब जमकर गाता था। रावण क रोल म उसकी बहुत धाक थी। नई मडी वाल उस हर साल बुलावा भजत थे। जब वह सवाद बोलता था तो जनता वाह्-वाह कर उठती थी। मास्टर राधेनाथ तो उस रावण ही कहकर पुकारत थे क्लास म। अक्सर कहत थे रावण तो बहुत विद्वान

कि अब वह गुड्डी को घर में नहीं आने देगी। लड़का स्टेट बैंक में क्लर्क था। बाद में वह गुड्डी को लेकर अपने घर आया था। पिताजी कई मर्तबा उससे मिलकर आये थे। वह भी दो मर्तबा उस मिल आया था।

□

वह बाथरूम से बाहर निकल आया। आंगन में तार पर लटके तौलिये को खींचकर मुंह पोछने लगा। तभी माती के चिल्लाने की आवाज उसके कानों से टकरायी, 'आँखें फूट गयी हैं तेरी। दूध अँगीठी पर रखकर न जाने कहाँ खो जाती है चुड़ैल। तेरा भी किसी से चक्कर चल रहा है क्या ?' मुनिया चुप पटरे पर बैठी थी रसोई-घर में। उसका ध्यान चूक गया था शायद। अँगीठी पर रखा दूध उफनकर फैल गया था थोड़ा-सा। उसे माती पर गुस्सा आया फिर अपने ऊपर भी गुस्सा आया। वह भी तमाम परिस्थितियों से सामना करने का साहस कहाँ जुटा पाया है आज तक।

पिताजी ज्यों के त्यों मूढ़े पर बैठे थे। वह कमरे में जाने लगा तो पिताजी ने धीरे से कहा 'मुनीश बेटे, जल्दी तैयार हो जाओ। कचहरी चलना है। रजिस्ट्री आज ही हो जाय तो अच्छा है।'

जी, अच्छा'—कहकर वह कमरे में घुस गया। उसे पिताजी के कहे शब्दों पर बेहद आश्चर्य हुआ, साथ ही खुशी भी। उसी खुशी के तहत वह जल्दी जल्दी कपड़े पहनने लगा।

बैताल की छब्बीसवीं कहानी

□ पुष्पपाल सिंह

बैताल का शव कंधों पर ढोते-ढोते वीर विक्रमादित्य बहुत थक गया। वह खीझ उठा और बोला 'हे बैताल! तुम्हें ढोते-ढोते मैं बुरी तरह थक गया। जम्बू द्वीप में अब इक्कीसवीं सदी भी आने को हुई और तुम हो कि मेरा पीछा ही नहीं छोड़ते! हमेशा मुझे प्रश्नाकुल स्थिति में रखे रहते हो, अब तो मेरा पीछा छोड़ो।'

विक्रम की ऐसी बेमुरव्वत बात सुन बैताल बोला, 'राजन्, बस अभी से घबड़ा गया? मैं तुझे प्रश्नाकुल बना चिंता में इसलिए रखता हूँ कि प्रश्नाकुलता और चिंता आधुनिक युग और आधुनिकता दोनों के लक्षण हैं। मेरा शव अपने कंधों पर ढोते ढोते तू इक्कीसवीं सदी की ओर आ चुका है, इक्कीसवीं सदी में तो और भी अधिक प्रश्नाकुलता रहेगी। अच्छा चल, जो तू मेरी इस छब्बीसवीं कहानी के प्रश्न का उत्तर दे दे तो मैं तुझे मुक्त कर चला जाऊंगा! तो सुन!!

□

दिल्ली नगर से पच्चीसेक कोस दूर एक नगरी है, छोटी नगरी। उसका नाम आज कुछ है तो और, पर हमारी पिछली कथाओं के अनुरूप धमपुर नाम ही ठीक रहेगा। बड़ी सभ्रांत नगरी है यह धमपुर!! खूब समृद्ध लोग हैं यहाँ के। यहाँ फूलवती नाम की एक विधवा रहती है।

एक बड़ी अजीब बात है इस नगरी की एक गली की। इसमें फूलवती ही नहीं ग्यारह घरों में सात विधवाएँ रहती हैं। यूं यह नगरी खाती पीती और सभी तरह के ऐशो आराम से भरपूर है। बिजली, सड़क, ट्रैक्टर, टी० वी० और कुछ घरों में कूलर तथा फ्लश भी लग गये हैं। इतना सब होते हुए भी इस नगरी को लोग नगर कम, गाँव ज्यादा मानते हैं या निखालिस गाँव ही मानते हैं क्योंकि यहाँ सभी परिवार प्रायः खेतिहर हैं। इस नगरी में प्रायः सब मेहनत कर पैसा कमाते हैं और मजे का जीवन जीते हैं। बस, ये विधवाएँ ऐसा जीवन जी रही हैं

जिससे नरक या मौत ज्यादा अच्छी है।

विक्रम तू सोचता होगा कि ये सातो की सातो विधवाएँ क्यो हुइ ? तो मुझे तो एक ही सबब खासतौर से दीखता है। पहले लोग जो शादी ब्याह करते थे, उसमे लडके-पुरुषो की उम्र ज्यादा होती थी और लडकी की कम, या बहुत ही कम। इसी का परिणाम था कि पति पहले चल बसता और पीछे जिंदगी के पापड बेलने और रहे सहे दिन पूरे करने उनकी राड रह जाती। रडापा और बुढ़ापा दो दो अभिशाप मिलकर एक पूरा नरक बन जाते। पर विक्रम, इस समय तू और बुढियाओ की बात छोड फूलवती की ही बात पर आ।

और फूलवती क्या इस मुहल्ले की सारी बुढियाएँ ही उतनी ही दुखी हैं। *जिसके एक बेटा है वह भी, जिसके दो तीन बेटे बहुएँ हैं वह भी और जिसके पाच-*छह बेटे बहुएँ हैं वह भी। जिसके सारी लडकियाँ हैं बेटे नही वह भी, जिसके कोई नही है वह भी। जिसके सब कोई है वह भी !! मगर विक्रम, बात तो फूलवती की चल रही है।

फूलवती के चार बेटे हैं। एक खेती मे घर पर ही, तीन बाहर, दूर दूर की जगहो पर ऊचे ऊचे ओहदो पर !! एक ऊँचा अफसर, एक इजीनियर और एक डॉक्टर। गाँव मे रहने वाले बेटे का भी अच्छा कारोबार और पैसे की तरफ से भगवान की मौज !! धमपुर के सब लोग बुढ़िया फूलो (फूलवती) के भाग को सराहते, *अरी तेरे क्या कमी है। चार-चार कमाऊ पूत। तुझे फिक्र काहे की !!'*

बुढिया भीतर ही भीतर दुखी है। पहले तो चुपचाप रहती खून का घूट भीतर ही भीतर पीती थी। टुसर टुसर रोती कापते हाथो, अलग चूल्हे पर अपनी रोटी सकती। कुछ दिन तो उसने घर की लाज को छिपाकर रखा। यही डर और शर्म कि कोई क्या कहेगा !! पर धमपुर जैसे गाव मे कितने दिन बात चुपचाप चल सकती थी। जितने मुँह उतनी बातें। कोई कहता, बुढिया के तीन तीन बेटे नौकरियो पर हैं चौथा गाँव मे मौज मे है फिर भी सबका इसके दो टूकड भारी। जाडे गर्मी, बरसात मे खुद रोटी सेकती है।'

क्या इसके लिए दो रोटी शहर वाले बेटे नही दे सकते।'

'नही दे सकते तो आग लगे उत्ता की ऐसी कमाई मे।'

तो राजा विक्रम, एक दिन मैं भी सच्चाई जानने के लिए गाव के ही एक बाशिंदे के चोल मे धमपुर मे उतर पडा।

पहले विक्रम, तू बुढिया की बात सुन !! साझ के झुटपुटे मे मैं बुढ़िया के घर पहुँचा तो थोडी देर उसकी मुडेर पर बैठ चुपचाप, अदश्य होकर, वहाँ का नजारा देखने लगा। तो क्या देखता हूँ कि बुढिया गिलास मे बाहर से पाव भर दूध माल लेकर आ रही थी। उसके आगन मे एक ओर गाँव मे रहने वाली बहू का चूल्हा जल रहा था तो दूसरी ओर बुढ़िया का। शायद कोइ दाल चूल्हे पर चढ़ाकर दूध

लेने गयी थी।

बुढ़िया दूध लेने बाहर क्या गयी ? बडा अचभा हुआ। इसके घर के आँगन म तो दो दो भैंस बँधी हैं और बहू इस समय दूध दुह रही है। फिर बुढ़िया ने वही पाव भर दूध दो गिलासो म अलग-अलग किया। आधा रात की चाय का, आधा सुबह की। रोटी पानी खा-पी, बुढ़िया अपने कमरे के बरामदे म झगोल सी खाट पर कुछ गूदडनुमा कपडे बिस्तर के नाम पर बिछाकर पड रही। मकान क दूसरे हिस्स मे बेटा-बहू व बच्चे हैं वे अपनी दुनिया म मगन सो जात हैं। सबके सो जान पर मैं बुढ़िया के पास आ जाता हूँ और उससे बात करन क लिए उसकी खाट की पाटी पर ही बठ जाता हूँ। बुढ़िया मुझे दखकर (अपन गाँव का ही बाशिदा समझ) बहुत बहुत खुश होती है।

'भली करी बीरन, जो तू आया। मैं तुझस दो बातें कर लूगी। पूरी पूरी रात यूँ ही चली जावै है। न कोई बतलाने कूँ, न बोलने कू। पडी-पडी कभी रो लू, कभी थोडी-बहुत सो लूँ ! ! नासपीटी रात काटे न कट।'

'अच्छा दादी, पहले यह बता तू अलग दूध क्यूँ लावै ? तरे घर तो दो-दो भैंस बँधी हैं।'

'भइया ! भैंस मरे किस मतलब की ? पहले लौंडा कभी कभार दूध बहू स चोरी चोरी द दवै हा, बहू कहव है जो तू मेरी भस का दूध पाव तो मूत पीव। भइया, अब तूई बता के फर भी मैं इनका दूध लेती ?'

'लौंडा कहन लगा माँ तू बाहर स दूध मत ला, हमी से मोल ले लिया कर, घर की बात घर म ही रह जागी। मैंन कही चल भइया ठीक है, पर बहू तो उसमे पानी मिलान लगी। मैंन एक दिन पानी डालती पकड ली तो बोली, 'भस के थन फट जाग, जो तन सा पानी न मिलाया। लेना हो तो ले, नही तो मत ल। कुछ एहसान नइ।' हारकर मैंने दूध औरों सँ बाँध लिया।'

विक्रम अभी मैं अलग रोटी की बात भी पूछना चाह रहा था, पर बुढ़िया को चैन कहाँ। वह अपने आप ही बताने लगी। उसे तो उतावली थी मन की सारी भडास निकालने की। कदाचित इतना धयवान श्रोता धमपुर म बहुत समय स उपलब्ध नहीं हो पाया था। या ता जब उसकी लडकी ससुराल से आ जायें या फिर गली-मुहल्ले की अन्य बुढियाओ म स किसी से बात हो जाये तभी मन की कह-सुन पाती थी। जिस समय मुहल्ले की दो चार बुढ़िया विधवाएँ कही मिल जाती तो लगता कि इन सासो की कोई यूनियन है जिसकी समस्याएँ साझी ही हैं। हर घर की वही कहानी जिस वे यू कहकर व्यक्त करती, 'बीबी घर घर मिट्टी के चूल्हे हैं। किसकी कहे, किसकी ना।'

इन गुप्त मत्रणाओ की खबर सभी घरा की बहुआ का भी कहीं न कही से लग ही जाती किंतु उनक पास यूनियनबाजी करन के लिए इतना खुला समय नही

होता। फिर भी घर गृहस्थी के टटो और भैंसो आदि के सानी पानी से फुसत मिलते ही वहुएँ भी अपना मोर्चा सभाल ही लेती। फिर तो वे गली की इन सारी विधवा बुढ़ियाओ की खबर पूरी तरह स लेती जो पता नही कैस काल कोए खाकर उतरी थी कि नासपीटी मरन का नाम ही नही लेती। उनका पिंड ही नहीं छाडती।

बुढ़िया बतान लगी, 'भइया अलग रोटी न करूँ तो क्या करूँ !! इसके (बहू क) तो लच्छन ही रोटी देन के नइ हैं। ऐसी ऐसी हुई-अनहुई कहव है अक कोई सुनें तो क्या कहे !'

फिर तो फूलवती शुरू हो गयी !! उसन बताया कि 'बहू उसके लिए अलग खराब अनाज के आटे की रोटी बनाती। घर मे कितना ही घी-दूध होता हो, कभी दाल दपाल म घी वी डालने का कोई काम ही नही। अपन मर्द और बच्चो के लिए चम्मच भर भर घी डालती है। मेरे नाम को ही नही है। दाल सब्जी भी ऐसी बनाकर धर दे है कि मुह म वो चलती ही नइ। पता नही भइया, मेरी ही ऐसी बनावै है या सब कुनबे की।'

बुढिया की यह दर्द भरी दास्तान सुन मैं बोल उठा, 'दादी तू यहाँ पडी-पडी क्यूँ सडै है, शहर मे बडे के पास क्यो नही जाती। वहाँ सुख से रह। उसके क्या कमी है?'

'अरे मेरे नसीबे म सुख कहाँ?' एक लम्बी उसाँस भरकर बुढिया ने कहा, उइ उत्ता क्या मुझे जीने दे।

फिर तो बुढिया बडे बेटे के बारे म शुरू हो गयी। कितनी बातें कही उसने, जिन सबका सारांश यही है कि उस इतनी इतनी कुर्बानी कर पढाया-लिखाया, आदमी बनाया। उम्मीद थी कि वही नैया पार लगायेगा। ठीक है उसने बहन-भाइयो को पढाया लिखाया, सबके ब्याह कारज किये, घर पर पक्की जगह भी बनवायी। पर क्या कर दिया, जिनका बाप मर जाता है भाई क्या उनके शादी ब्याह नही करते !! अब जब मैं वहाँ चली जाती हू तो उसके यहाँ तो बदिश बडी भारी हैं। इसके सामने मत आ, उसके सामने मत जा। वसे मत उठ। यह कमीज मत पहन, वह धोती न बाँध !! यहाँ पेशाब न कर, वहाँ कर। कुर्सी सोफे पर पाँव धर के मत बैठ !! यही सब !! अब हमारे बस (वश) की है नही हर समय सजे धजे रहना !! किसी के घर जा बठो तो बिना पूछ इनके यहाँ क्यो गयी य पता है कितने छोटे तबके के लोग हैं !! भला पूछो कस छोटे हैं वे? उनके भी रेडियो है टी०वी०है, सोफा है—सब कुछ है जो कुछ तुम्हारे पास है। पर नही वे इनकी शान से छोटे हैं। हुई भला कुछ बात? बच्चे हैं स्कूल कालिज स आते ही जी होवै है कि बेटी-पोतो से घडी दो घडी बात करूँ पर व कहत हैं दादी हम सोने दो।' सोकर उठते हैं कि पढ़ना। चलो दिन म पढ़ना है तो रात को ही दो बात कर लो। उत्ती

यहाँ तो नींद आती ही नहीं, वहाँ भी नहीं आती। ऐसे में दो चार बात कर ली पर रात को दो चार बार पूछ लिया कि 'क्या बजा है', 'क्या टैम है' तो सुबह ही अपने मम्मी-पापा से जड़ देंगे, 'दादी हमें रात भर सोने नहीं देती।' अब बेटा बहू के कमरे में सोऊँ कैसे!! उत्ते स्टोर में अकेले नींद मुझे ना आवै!! दिन भर खाली पड़ी कभी यह, कभी वह खाये जाओ, न कुछ काम करने का, न धरने को। खाली बैठे जी लगे भी तो कैसे!!

एक दिन जबे तोड़कर मैंने दो चारपाइयों पर सुखा दिये तो बेटा कहता है, 'क्या सब जगह मक्खी ही मक्खी भिनभिना दी, गन्दगी फैला दली हो माँ!' खायेंगे खूब स्वाद से पर बनाने नहीं देंगे। अरे! ऐसा भी क्या पैसे का घमण्ड कि जबे मत तोड़ो, बाजार से ले आयेंगे। जो चीज देखो, बाजार से ले आयेंगे।

एक दिन मैंने उसके कमरे की सफाई कर दी। काम वाली नहीं आयी थी, बहू को टैम नहीं मिला तो यह कमबख्त मुझसे लड़ पड़ा, 'माँ तुमने ड्राइंगरूम में पायदान मेज पर क्यों रख दिया?' भला पोंछा करती तो पाँव पूछने के वो वहाँ से नहीं हटाती? उस मेज पर रखी पीतल की टोकनी की इत्र की बालियाँ क्यों हटा दी?' भला यह भी कोई शोभा की चीज हुई कि उठाकर छोटी तिपाई पर नचा दी। मैंने टोकनी पानी भरने के लिए उठाकर रख दी और इत्र की [illegible] कूड़े में फेंक दी। बस इसी बात पर खूब बोला, कुछ समझता ही नहीं [illegible]।

बुढ़िया की विपदाओं की रामकहानी खत्म होने का ही नहीं आ रही थी। उसकी बातें पूर्णतः निरर्थक भी नहीं थी। उसकी दुखती रग यही थी कि [illegible] संतान के लिए मर-खपकर पैसा कमाते हैं, जोड़ते हैं। उनके [illegible] के लिए वे क्या नहीं सहते। अपना आज उनके कल के लिए [illegible] कर देते हैं किन्तु जब तक वह कल आता है माँ-बाप पूरी तरह एक [illegible] की स्थिति में आ जाते हैं। विक्रम! क्या कभी इस सनातन कालगति का [illegible] हो सकता है?

मैंने बुढ़िया से कहा यदि ऐसा ही है तो तू अपने दूसरे बेटे के पास क्यों नहीं चली जाती? वह बोली—हाय! महीने [illegible] नहीं पटता, वहाँ [illegible] जाऊँ ना!! छोटे के पास कभी [illegible] उसका ब्याह हुआ है उसकी भी आँख बदली हुई है। [illegible] कहती थी, 'हम माँ को [illegible]' जब तक ब्याह नहीं हुआ था [illegible] बछड़ा हो। कहता था, '[illegible] हमेशा मेरे साथ ही रहना।'

बुढ़िया अब रुआँसी हो आयी थी। वह यह अनुभव कर रही थी कि उसका इस दीन दुनिया म कोई नही है, बेटा न पोता !!

बैताल बोला, राजा विक्रम ! मुझे लगा कि बुढ़िया की तो बहुत सुन ली, ऐसी क्या बात है कि इसकी अपने किसी भी बेटे बहू से नही निभ पा रही है ? कहीं बुढ़िया के व्यवहार म तो कोई खोट नही ? क्यो न इसक बेटे बहुओ स मुलाकात कर उनके जी की भी जानूं। सो मैं गाँव क उसी बाशिंदे के चोले म उडता उडता उस शहर जा पहुँचा जहाँ उसका बडा बेटा एक दफ्तर म ऊँचे ओहदे पर अफसर था। उन्होने मेरी खूब आवभगत की। अपने गाँव क आदमी क रूप म मुझे पाकर बहुत खुश हुए। उनके यहाँ शाम के वक्त रोज कोई न कोई महफिल सी जमती। कभी कोई आता, कभी कोई जाता। कभी चाय कॉफी तो कभी शबत ! मैंने सोचा जब य मुझ जसे आदमियो की इतनी आवभगत करते है जो इनका कुछ नही लगता और पस की भी कोई असुविधा या अभाव यहाँ नही दीखता, तो क्या य अपनी माँ को दो जून की रोटी नही दे सकते ? रात को खाने के बाद लौटने पर मैंने उनसे यही समस्या रखी कि तुम्हारी माँ धमपुर मे इतनी दुखी है और तुम यहा ऐसे रहते हो ! तुम उसे यहाँ क्यो नही बुला लेते ? उसकी पत्नी भी वही उपस्थित थी। दोनो को माँ की हालत सुनकर बहुत अफसोस हुआ। उनके दिल की बात से लगा कि दिखाने के लिए नही अपितु आतरिक रूप स अपनी बात कह रहे हैं।

☐

बेटा बोला—आज भगवान की दया से हम सभी भाई इस हालत मे हैं कि किसी गैर को भी हमेशा बिठाकर खिला सकते हैं भगवान का दिया सब कुछ हमारे पास है। जितना मा बेचारी खायेगी उससे ज्यादा तो महरी के ही चला जाता होगा। लेकिन हमारी माँ के भाग्य म सुख बदा ही नही है, चन स बैठकर दो रोटी खाना लिखा ही नही है। अब हम क्या कर, क्या वश है हमारा भाग्य पर और माँ की आदतो पर ! जब यहा आ जाती है तो घर की शान्ति हमेशा भग रहती है। लगता है पूरा घर एक तनाव मे जी रहा है। मा तनाव और अशान्ति के लिए कोई न कोई कारण हमेशा खडा रखती है।

बडी लडकी का बी० एस सी० का अतिम वष था। वह मथ्स के लिए ट्यूशन पढ़ने नवम्बर दिसम्बर मे अधेरे मे ही प्रात छ बजे जाती थी तो हर वखत उस बच्चे से टोका-टाकी रखना। ऐं ! तू अकेली ही मास्टर के पास पढ़ने जाव है या और कोई भी वहाँ होव है ? तेरा बाप तुझ जाकर भी देख है या तू कहियो फिरे जावे। कभी कहती, तू चुन्नी गल म लटका के चल दव, सिर पर ओढ़ा कर।' लड़की रोती मेरे पास आती, 'पापाजी, हम इतने बडे हो गय आपने तो कभी हम कुछ कहा नही। दादी कभी हमारे चरित्र के बिगड़ जाने की बात करती हैं तो कभी

कुछ !! कहती हैं अँधेरे-उजाले म तुम कहाँ जाती रहती हो ?'

ऐसी शिकायत लडकी को ही नही, लडके को भी थी। वह भी अपनी मेडिकल की तैयारी म तीन तीन जगह ट्यूशन पढ़ने जाता था। उसको लेकर माँ को यही चिंता थी कि यह दिन भर पता नही कहाँ कहाँ मारा मारा फिरता है। क्या पता कहकर तो जाता है पढन को कही और ही मूड जा मारता हो। बच्चे और सब कुछ बर्दाश्त कर सकते हैं किन्तु अपने चरित्र के विषय म एक शब्द भी नही। फलत मैंने देखा, बच्चे जब भी अपनी दादी स बोलते तो झल्लाकर। मुझे और सगीता को लगता कि माँ के साथ रहकर तो बच्चे बोलने मे भी अशिष्ट होते जा रहे हैं। इसलिए हम उन्हे बहुत समझाते, बेटे ! वडे बूढ़े तो यू ही कहा करते हैं। उनकी सोच ही ऐसी हो जाती है। फिर उन्होने गाँव मे जैसा देखा है वसा ही तो सोचेंगी।'

इस उपदेश के पीछे मेरे मन मे वे सब बातें घुमडती रहती जो माँ जब-तब खबरो के टुकडो के रूप मे बताती रहती—भइया ! गाँव म तो बस आग लग रही है। फलाने की बहू खेतो पर जाती, अपने अमुक यार से मिलती है, लडकियाँ गोबर सानी या लकडी लान के बहाने किस किस से कसे कसे मिलती हैं। अमुक-अमुक की लडकी के कुआरी के ही हमल था—पहले तो हसो भगन सौ पचास लेकर केस रफा दफा कर देती थी। अब गाँव की मिडवाइफ भी ऐसे केसो का निपटान करने लगी हैं। कोई चार पाँच महीने के लिए अपनी लडकी को कही बाहर रिश्तदारी आदि म भेजकर उसका निपटान करवा लेता है आदि। तब मुझे लगता कि गाँव स शहर मे ज्यादा डर भर है। कहाँ गये गाँव के वे आदश जहाँ मर्यादाओ के बधन, दूसरे की बहू बेटी को अपनी बहू-बेटी मानने वाली लीकें ज्यादा थी—ये भ्रष्टताएँ नहीं।

दादी को लेकर बच्चो को समझान का असर थोडी बहुत देर रहता फिर वही चाल !! किसी न किसी बात को लेकर बच्चो की दादी से झटक हो जाती। छोटी लडकी से भी जो अभी पाँचवी म पढ़ रही थी, माँ को शिकायत रहती। भारी बस्ता स्कूल स लिए वह प्राय चार बजे स्कूल स लौटती तो थोडा खा पीकर अपना होम वर्क लेकर बैठ जाती जो टी० वी० कार्यक्रम आने तक बडी मुश्किल स समाप्त हो पाता। माँ को शिकायत यह कि यह छुटकी भी उससे ठीक तरह नही बोलती। जब वह होम वर्क करती तो बीच बीच म माँ कभी कुछ, कभी कुछ उसस बात करना चाहती। वह झल्लाकर जवाब देती।

उधर दोपहर मे जब पत्नी खाली होती तो माँ पता नही उससे कहाँ कहाँ का पारिवारिक इतिहास पुराण लेकर बैठ जाती। किसी बच्चे का नाम लेकर, 'इसके बाप ने मेरी एक भी चीज (सोने चाँदी की) न छोडी। छोटी पूनम के ब्याह पर पूरी पाँच किलो चाँदी थी, डडी की तुली हुई जो इसने बेच दी। मेरी सोने की चीजें

भी न छोडो' आदि।

पत्नी एक आक्रोश व गुबार से भरी ऐसी रहती जैसे कोई बहुत ज्यादा फुलाया गया गुब्बारा, जो कभी अपने आप ही या कभी जरा-सी बात की पिन चुभते ही फट पडेगा। यह फटना कभी फूटने रोने के रूप मे होता तो कभी मुझे आक्रोशपूर्वक झिडकने जैसा। वह भी अपनी जगह सही थी, यो उसका बर्दाश्त का माद्दा मुझसे कही ज्यादा था।

सगीता ने इस घर के लिए, अपनी ननदो एव देवरो के लिए जितनी कुर्बानी की थी, आज के जमाने मे जहाँ स्वाथ अधिक प्रबल है जहाँ हर बहू अपन पीहर स यारे साझे के प्रश्ना के बहुत चौकस उत्तर सीखकर आती है, उसका त्याग और घर को बनाने मे भूमिका बहुत महत्वपूण थी। पीहर म लडकियो को कोई त्यारे साथे की शिक्षा देता नही किन्तु आज स्वाथ और भौतिकतावादी दष्टि इतनी प्रबल है कि अपने भले बुरे का ज्ञान सबका सहज रूप म ही है। ऐसे समय के बीच सगीता न अपनी अपने पिता के नाम व पति की इज्जत रखने के लिए, क्या नही सहा इस घर के लिए, जो उसका कम माँ का ज्यादा था। जब भी परिवार म ब्याह शादी आयी, उसने अपना बक्स खोल दिया। जो चाहे कपडे ननदो की शादो म दे दो। कही कोई कमी न रह जाये कही हमारी बात नीची न रह जाय। बतन से लेकर कपडे हाथ का जेवर क्या नही छाडा उसने अपनी ननद व देवरो के लिए।

ननद ससुराल जा रही है पति के पास पैसे नही हैं साडी लान के लिए तो झट अपने बक्स से साडा निकाल चितामुक्त किया है मुझ। किन्तु उसने कभी इस त्याग का कोई प्रतिदान या मोल नही माँगा था। माँगा था केवल आदर और प्यार किन्तु उसका दुर्भाग्य कि वह भी न मिला। आज कोई उसे कुछ नही समझता। वह सोचती है आज हमारे पास भी अपना मकान कोठी होती, बैंक म चार पस होते, पर हम तो पूरी उम्र दूसरो का करत रहे और घर का अध-कूप फिर भी नही भॅट सका। अब अपन बच्चो का कुछ करन का नम्बर आया है तो हम खुक्खलनाथ हैं। ऐसा लगता है जीवन की दौड म हम बुरी तरह हारे हैं अपनी तपस्या की विफलता पर एक पश्चाताप-सा होता है कि क्यो व्यथ दूसरो के लिए जिंदगी होम दी।'

इस सबस परेशान संगीता मुझसे कहती, 'क्यों बेची हैं आपन माँ की चीजें? आप खुद ही अपन बहन भाइया क ब्याह-कारज करते? क्या पडी रहती हैं माँजी हमशा मरे पीछ!! आप क्यों नही करी‑ दत इनक जेवर फिर स इ‑ह!!' दफ्तर से थका-माँदा आता, कितन ही दफ्तरी तनावो को झलत हुए इन बातो को सुन मरे तन-बदन म आग लग जाती। मरा फ्यूज एकदम उड जाता माँ! मैंन ब्याह शादा किया अपन बच्च की तो का नहीं। यदि वे मरे बहन भाइ प वा तुम्हारे भी

तो कुछ थे। सब तुम्हारी लडकियो और लडको की शादी मे ही तो खर्च हुआ।' मा से बोलने की यह मेरी स्वाभाविक टोन और माद्दा न था किन्तु वे क्रोध ही इतना दिला देती।

'जब तो तुम्हारी इच्छा होती कि शादी मे यह भी होगा, वह भी होगा, यह भी चाहिए, वह भी चाहिए। यदि यह न किया तो हमारी नाक कट जायेगी, यदि वह नही किया तो लोग क्या कहगे।'

मैं एक योग्य पुत्र सा दिवगत पिता क नाम की रक्षा के लिए, यह सोचता हुआ कि माँ को यह अहसास न हो कि पिता होते तो इस ब्याह म यह और हो जाता, माँ की इच्छाओ का दास बना नाचता। 'तुम्हारी इच्छाओ की पूर्ति के लिए ही माँ तुम्हारा जेवर बिका और जिसम से आधा तो लॉकिट जजीर, तगडी पाजेब आदि के रूप मे लडकियो को चला भी गया है। माँ ! तुम आज मुझस सोना-चाँदी माँगती हो ? माँ, तुम्ह हो क्या गया है ?' सवाद के अन्त तक पहुँचते पहुचते मेरे क्रोध वाली करारी आवाज भर्रा-सी जाती, भीग जाती। मैं इस युद्ध-स्थल से हट जाता।

कोई पार बसाती न देखकर, सभी तर्कों के बेमानी हो जाने पर माँ अन्तिम अस्त्र, अपना ब्रह्मास्त्र चलाती, 'तुम्हारा बाप होता तो मुझे यह दिन क्यू देखना पडता।' इस शस्त्र के आगे मेरा भी धैर्य और सहनशक्ति चुक जाती। मैं अपने कमरे म पाँव पटकता चला जाता। दो चार दिन घर म एक अबोलेपन का भूत अपनी छाया फैलाय रखता। माँ तक सवाद के पुल सिर्फ बच्चे रह जाते किन्तु उनकी बातचीत भी पूर्ववत् सहजता म नही हो पाती।

तो बताओ, यदि ऐस म माँ गाँव जाना चाहे और आग्रह कर कि मुझे बस म बिठा दो, फलाँ से मिले मुझे बहुत दिन हो गय, मुझे उसका सिदारा भेजना है, उसका यह करना है या वह, तो हम उसे कस रोकें ? मजबूर होकर हम उस बस म बिठा आते, ऐसा न जाने कितनी बार हुआ है।

☐

राजा विक्रम ! यह सब किस्सा सुन मैंने बुढ़िया के बड़ बेटे से कुछ भी कहना ठीक नही समझा। मन हुआ कि इसी रूप म क्यो न दूसरे शहर मे रहते बुढ़िया फूलवती के छोटे बेटे-बहू के पास जाया जाय और उनकी भी सुनी जाय। सो मैं उसी चोले म फिर उड चला और चलते चलते उस शहर पहुँचा जहाँ फूलवती के छोटे बेटे बहू अपनी अकेली दुनिया म राज करत थ। न काई फिक्र, न फाका !! सबस छोटा होन के कारण इस बेटे की जिम्मेदारियाँ परिवार के प्रति कभी नहीं रहीं। जब तक कुछ कमाने धमाने लायक हुआ, तब तक परिवार के सघर्ष का वक्त गुजर गया था। इसलिए वह ज्यादा अलमस्त था।

सध्या समय छोटा बेटा अस्पताल म अपनी ड्यूटी का राउण्ड लेकर आया था। राजा विश्रम, तभी मैं वहाँ जा पहुचा। उस लडके न भी अपने गाँव स आया जान मेरा भरपूर आतिथ्य किया। इस लड़के के यहाँ पहुँचकर भी यही अनुभूति हुई कि बुढ़िया के सभी बेटे बहुत अच्छ हैं। दा से तो मुलाकात नही हुई, वे भी इन जसे ही होगे। रात को जब खाना पीना निबट गया तो हम गाँव जहान की बात करने लगे। हात-करत बात इसी बिन्दु पर आ पहुँची कि तुमने अपनी माँ को गाँव म फटेहाल क्यो रख छोडा है ? उस यहाँ बुला क्यो नही लेते ?'

वह लडका भी बडे भाई की तरह ही कहने लगा—क्या बतायें भाई साहब, हम तो खुद शम आती है। हमारी माँ स न तो खुद रहा जाता है न चन स रहने देती हैं। न खुद रहना आता है न बहुआ का रखना आता है। वे कभी नही सोच पाती कि जमाना कहाँ का कहाँ पहुँच गया है पर उन्हे इसस यही शिकायत है कि तू इस काम को यू क्यो नही करती, वू क्यो नही करती। इस समय सिर ढका रखा कर, इस समय उघाडा। कभी कहेगी, हमने तो कभी बडो के सामन घूघट खोला ही नही। आजकल की बहुओ को कहा सुहाता है यह सब ! सब्जी बनी तो वह वैसे क्यो, ऐसे क्यो नहा बनायी। इस सब्जी म हीग डालनी थी, उसम नही। इसमे मेथी का छौंक लगना था, उसमे ! सुनीता तो स्कूल म पढाती है, इसे तो उल्टी सीधी रोटी बनाकर अपने समय को नौकरी क हिसाब स एडजस्ट करना है। माँ तो अब खाने के लिए जीती हैं और हम जीन क लिए खाना खाते हैं। अब हम यह सोचना है कि बच्चे कब होने चाहिएँ। हमे अपने करियर के हिसाब से प्लानिंग करनी है कि तु इसी सवाल को लेकर सुनीता स झिकझिक बाजी करती रहेगी। अरी, हद हो गयी, तुम्हारे ब्याह को ढाइ साल होन को आय और अभी चूही तक घर मे नही ? चल तुझे मैं दिखाकर लाऊँगी बडी डॉक्टरनी को। आजकल तो ब्याह के पूरे नौ महीने बाद भी बच्चे होव हैं पर एक तू है ।' पहली बात तो एसा है नही कि हम दोनो म शारीरिक रूप स कोई विकार हो। हम तो शादी के तीन साल बाद तक कोई बच्चा चाहते ही नही हैं। अभी मुझ आगे अपनी स्टडी करनी है, पत्नी को भी अपना बीच म छूटा एम० ए० पूरा करना है। फिर किसी शारीरिक विकार के कारण ही सतान न हो पा रही है तो उन्ह सिफ यही पता है कि बहू म ही कमी होगी इनके बेटे मे नही।

अब शादी को थोडा बहुत समय ही हुआ है तो घूमने फिरने या कभी कभार पिक्चर विक्चर तो जायेगे ही किन्तु माँ हैं कि उन्हे यह सब फूटी आँख नही सुहाता। जब कभी कही बाहर जाने के लिए तयार होन की सोचते कि आज माँ से इजाजत लेकर ही जायेगे। जाते हुए थोडा पूछकर चल ही जाओ तो क्या बिगडता है, बडे-बूढो की आत्मा सतुष्ट होती है। लगता है बेटा बहू बहुत लायक हैं। किन्तु अभी हम पूछ पात भी नही कि माँ पहले स ही सवाल दाग दती, अब

कहाँ कू चले सज धजकर।' बस पत्नी के मूड का फ्यूज फडाक स उड जाता। बाहर निकलकर मूड को पुन सम पर लाने मे, चहकान म, उतना ही समय लग जाता जितना खभे स उडी विजली का फ्यूज पुन जोडने आने वाले बिजली कमचारियो लाइनमैन आदि को लगता। जब कभी कही से हम आते तो हमारा स्वागत माँ इन शब्दो स करती कहा क्या उडा आय क्या माल खाय ?' हम माँ के खान पीने के लिए कोई फल या मिठाई जरूर लाते पर इस वाक्य की गोली-सी बात सुनीता को लग जाती।

कभी उसके कपडो के रग को लेकर जो उसने बहुत मन से खरीदा और पहना होता कहती क्या रग लिया है, एकदम नही भाता। बिलकुल गँवारू डिजन है।' गज यह है कि किसी न किसी बात पर माँ का झण्डा यहाँ अलग ही धज स फहराता। इसलिए जब अबकी बार उन्होने गाँव जाने का आग्रह किया तो हमने उन्हें रोका नही। उनके कहते ही एक छुट्टी के दिन गाँव छोड आया। बस, इसी के गुस्स म उन्होने वहाँ से चिट्ठी लिख दी है कि अब मैं तेरे यहाँ कभी नही आऊँगी। यो उनकी बडी इच्छा रहती थी कि वे जब मरे तो मेरा हाथ ही उनमे लग, मैं ही उनकी अर्थी को कधा दू। किन्तु अब !!

अब आप ही बताइय माँ को न रखन मे हमारा क्या कसूर है ? हम तो खुद उनके लिए बहुत चिन्तित रहते हैं। मैं तो सोच जाता हूँ, चलो बड बूढे कुछ भी कहे, सब सुन लो, किन्तु पत्नी तो पराई जायी है, इसे तो प्यार दन से ही वे प्यार पा सकती हैं।

राजा विक्रम ! अब छोटे की बात सुन, मुझे दूसरे शहर रहते इससे बडे बेटे के पास जाना व्यथ सा लगा। सोचा, शहर मे रहते सभी बेटो के लिए बुढिया इसी तरह की समस्याएँ पदा करती होगी या शहर मे रहत तीनो बेटे बुढिया को एक से ही लगते होगे। फूलवती के जो बेटे बहू गाँव म ही रहत हैं, क्यो न उनकी सुनी जाये ? चलो उनके भी मन की ले ही ले। चुनाचे मैं उडता उडता पुन धमपुर गाँव म आ पहुचा और रात होते होत बुढिया फूलवती के घर पर था।

अबकी बार बुढ़िया की तरफ नही उसके बेटे हरीसिंह की ओर जा निकला। अभी मैं गाँव वाले के रूमी भेष मे था। रोटी पानी कर जब वे लोग आराम स बतिया रहे थे तो मैं जा पहुँचा। उसने मुझे अपनी बैठक मे बिठाया। रोटी पानी की पूछी परन्तु मैं तो खाये पिये था। उसस यही कहा, क्यो भई, तुम्हारे घर म सब कुछ है फिर भी तुम्हारी माँ इस उमर मे भी अपनी दो चदूकडी अलग सेंके ? इस घर मे दो दो भसे दूध देती हो और बुढिया बाहर स मोल दूध लाये ? यह कहाँ की इसानियत है ? सारे गाँव म थू थू हो रही है तुम्हारी !!'

पहले तो हरीसिंह क्रोध मे भिन्ना सा गया किन्तु मैं (मेरा गाँव वाले का रूप गाँव रिश्ते मे बडा था तो वह कुछ अबे-तबे नही बोला। थोडी देर म वह सम

आकर बोला—हम क्या करें !! हमारी माँ अलग ढंग की बुढ़िया है। रोटी यदि एक जगह बनती है तो उसमें हमेशा नुक्स ही निकालती रहती है कभी कुछ, कभी कुछ !! कभी दाल दो कौड़ी की नहीं बनती कभी सब्जी बिल्कुल काम की नहीं। कभी रोटी कच्ची तो कभी ज्यादा पकी। उन्हें कितना ही समझाओ 'और सब भी यही खाते हैं' किन्तु उन्हें शक रहता है कि उन्हें अलग से बनाकर दी गयी है। कभी जब ये सब बातें नहीं चल पाती तो 'रोटी को बहुत कड़ा कर देती', या कोई रोटियों का टम है', इत्यादि। कभी कोई मेहमान, विशेषतः लड़कियों के आ जाने पर कितना ही अच्छे से अच्छा करने पर माँ की यही शिकायत रहती कि यह नहीं हुआ, वह और होना चाहिए था। यह नहीं दिया गया वह और देना चाहिए था।

बाहर से मैं थका-हारा आऊँ तो आते ही रोज यही महाभारत !! कभी किसी बात पर तो कभी किसी पर !! कभी तेरे इस बच्चे ने यह कर दिया, फलाँ बच्चे ने मुझे यह कह दिया। कभी तेरी बहू ने यह कहा, वह किया। मैं बहुत समझाता माँ ! तुम क्यों इन्हें मेरा बच्चा और बहू ही कहती हो ? क्या ये तुम्हारे लिए कुछ भी नहीं हैं तुम्हारे कुछ भी नहीं लगते ? ये तुमने क्या लगा रखी है तेरे बच्चे तेरी बहू', तुम इन बच्चों को अपना समझो, बहू को अपना समझो और कहो, जिससे ये भी तुम्हें कुछ समझें अपना समझें। बस माँ की एक ही रट रहती 'मुझे तू दो रोटी के लिए अलग कर दे।' यह रोज की चख चख !! चूल्हे की आग बुझ जाती पर इस घर की लड़ाई न बुझती। मैं क्या करता !! हारकर माँ को हर फसल पर अलग गेहूँ आदि देने का फैसला कर अलग करना पड़ा। माँ को अलग रोटी बनाकर देखते अभी भी मेरा हृदय रोता है पर क्या करूँ !!

□

राजा विक्रम, इन सबकी अलग अलग बातें सुनकर मैं सोचता हूँ कि इन सबंधों का समीकरण कहाँ गलत हो गया है। अब किसके पास जाकर असलियत का पता चल पायेगा ? किन्तु विक्रम ! तू तो ज्ञानवान है तू ही बता कसूर किसका है, माँ का या बड़े बेटे का, छोटे बेटे का या गाँव में रहते इस बेटे का ?

राजा विक्रम चक्कर में आ गया उससे कोई उत्तर न बन पड़ा। वैताल का शव उसके कंधों पर ही टँगा रहा क्योंकि अबकी बार तो छब्बीसवीं कहानी की शर्त यह थी कि यदि वह उत्तर दे देगा तो वैताल का प्रेत उसे मुक्त कर देगा। निरुत्तर स्थिति में वैताल का शव अभी भी विक्रम के कंधों पर है और वह उसे ढोता फिर रहा है।

कमरा खाली है

□ ब्रजमोहन

लोग कहते हैं पहले पेड जब बूढ़े होते थे लोग उनकी पूजा करते थे। परन्तु अब बात ऐसी नही है। अधे का रास्ता और इ सान का बुढ़ापा समान है। हाथ-पांव सलामत हो तब भी जिंदगी की आस बनी रहती है, हाथ पांव काम करना बद कर दें तो जीते जी नरक हो जाता है।

'अपने किये का इसी जन्म म भुगतान होता है बेटे ! हम जितना भी बुरा करते हैं सब दुख के रूप म सामने आता है, सब कुछ एक एक करके '

घर के सबसे छोटे सदस्य अट्टू के साथ बैठकर बाबा एसे बतियाते मानो बच्चा सब कुछ समझता है। न हीं अट्टू भी ज्ञानियो की मुद्रा बनाकर जिज्ञासावश बाबा स पूछता, 'आपने किसका बुरा किया है बाबा जो माँ और बापू तुमस कभी सीधे मुह बात नही करते ?'

भरी हुई आँखो से बाबा नन्हे अट्टू को अपनी छाती से चिपका लते। आँखो मे सारा जीवन किसी देवता की तरह जीवित हो उठता। बाबा को लगता अट्टू उनका बचपन है, जहाँ से यात्रा आरम्भ होती है। बचपन के किसी रास्ते पर उड़ती धूल म बाबा कही खो जाते ।

'माँ मुझे पढ़ा नही सकती तो कूवें मे फेंक दें '

'न न बेटे न ऐसी बातें मत निकाल मुह स तेरे पिता नही हैं तो क्या ताना मारता है मुझ '

पढाई की शुरुआत हुई, पर नही। जीवन न कभी ज्यादा पढ़न ही आगे नहीं दी। किरयाने की दुकान स शुरू हुआ जीवन चपरासी खाता मास्टर और कमीशन ठेकेदार के यहाँ मुनीमी तक पहुँचा। उसके बाद माँ के देहात से लेकर पत्नी के देहात तक की कथा में प्रापना की तरह इकलौते पुत्र शिवचरण का योग लिखा था। और लिखा था अवहेलनाओ के बीच दम तोडता बुढ़ापा।

पूरे छ महीने की मशक्कत म बने तीस साल पुराने इस मकान के एक कमरे म

इतना अंधेरा मिलेगा—यह बाबा ने कभी सोचा भी न था। यह घर आज भी पूरी मुस्तदी और मजबूती के साथ खडा है। बाबा से अधिक स्थायी बाबा से अधिक टिकाऊ और बाबा स अधिक उपयोगी।

समय समय पर इसकी सफदी और मरम्मत हुई है। तभी इसकी शान अभी बाकी है। गली पक्की है एकदम मजबूत और दोनो तरफ ढलवां नालियां हैं, जो सारे घर की गदगी को बहा ले जाती हैं। घर के तीन दरवाजे बाहर गली मे खुलते हैं। पहला दायी तरफ के कमरे का है दूसरा मेन गेट का और तीसरा बायी तरफ के कमरे का है। दाएँ और बाएँ कमरे के दरवाजे अन्दर चौक मे भी खुलते हैं। अन्दर दो कमरे और हैं जिनमे घर के मालिक रहते हैं। उनके पाँच बच्चे हैं—बाबा के पोते। मां और बाप की तमतमाती लाल आँखो के अलावा व किसी स नही डरते। मा और बाप के अन्तरमुखी जीवन के अलगाव न बच्चो की तरफ स अपना ध्यान हटा लिया है।

सबसे बडा राधे नवी म है। पढाई को ऊँट की तरह खीचता फिल्मो का शौकीन राधे सप्ताह मे एक दिन जरूर स्कूल से फूटकर फिल्म देखता है और उस दिन एस घर लौटता है मानो सारी किताबें जबानी याद करके लौटा है। उसस छोटा पूरन दावतो का शौकीन है। वह सदा इस ताक मे रहता है कब अडोस पडोस म कोई बारात आये कोई पार्टी हो और वह साफ सुथरे कपडे पहनकर मिठाइयो पर हाथ साफ करे। सबसे स्वादिष्ट सब्जी का डोगा उठाकर घर लाये और सबको उगलियां चटवा दे। उसकी शरारतो पर मुग्ध मा बाप उस चाहते। उसस छोटी लडकी रीना घर के काम करके स्कूल जाने तक बराबर डाँट और झिडकियां खाती बडी हो रही है। उससे छोटी सपना तीसरी जमात म है। स्कूल के बाद भी घर म हर समय स्लेट पर झुके रहने से उसकी आँखें कमजोर हा चली हैं। सबस छाटा अटू देखने मे देवता और हरकतो म शैतान का ताऊ। सबकी किताब कापियो के पन्ने फाडकर हवाई जहाज बनाकर उडाता। वही कभा कभी बाबा के कमरे म जाता है और उनसे बातें करता है। बायी तरफ का कमरा बच्चो के पिता शिवचरण का है जिसम रखी पुरानी किताबो को दीमक ने चाट लिया है। साल-छ महीने मे कभी कभार उनम से कोई किताब निकालकर शिवचरण कोई कविता लिखता है। वसे वह जीवन का पटरी पर लाने के जुगाड म पुराने टायर बेचने का धधा कर रहा है। जीवन और घर स असतुष्ट शिवचरण पहले बाबा के पास घटो बठना। अब बाबा का मुह देखे भी उसे हफ्तो गुजर जाते हैं।

रात भर बाबा के कमरे से खासने की आवाजें आती हैं। नीद मे भी जागती आँखा म कोई सपना नही है। फलता हुआ एक अधेरा रात दिन उस कमरे म महसूस हाता है। बाबा के बुढापे स तग आकर सब उनकी मौत का इतजार करने लग हैं। उनकी सूरत पर मनहूसता का ठप्पा लग गया है। बेटा और बहू छाती

पर रखे पहाड़ की तरह उनको देखने लगे हैं। बच्चों के लिए बाबा का उठना, बैठना, बोलना सब खेल हो गया है। बाबा की लाठी और चश्मा उठाकर बच्चे कहीं भी छिपा देते हैं। बाबा चिल्लाते हैं, पर उनकी आवाज सबके कानों के बगल से होकर गुजर जाती है। बुढ़ापे ने सब कुछ अजनबी और बेगाना कर दिया है। यह मकान जिसकी एक एक इंट जुटाने में रीढ़ धनुष की तरह घूम गयी अचानक ही अपरिचित और पराया लगने लगा है।

घर की दिनचर्या इस प्रकार आरम्भ होती है—दिन निकलते ही बच्चों को गूदड़ों से खींच खींचकर उठाने की हाय तौबा मचती है। बड़े होने के बाद भी बच्चे रात में दो दो बार मूते हुए गूदड़ों की सीलन से न निकलने के लिए चिल्लाते हैं। परन्तु भारी भरकम शरीर वाली उनकी माँ गुस्से से बिफरती अपने पाँव पलंग से नीचे उतारती है तो दोनों बच्चियाँ धड़ाम से उठ खड़ी होती हैं। लड़कियाँ अगर आलस दिखाती हैं तो माँ चुटिया पकड़कर खींचती उनका मुँह सीधे नल के नीचे झुका देती है और ठंडा पानी लड़कियों की आँखें सुख कर देता है। उसके बाद वह लड़कों पर झपटती है। उनके कान मरोड़कर उन्हें खड़ा करती है। तब रसोई में धमकती है और स्टोव की गुद्दी पकड़कर उसमें पम्प मारती, उसके मुँह में पिन घुसेड़ती फिर आग दिखाती और स्टोव के जलते ही पानी का भगौना चाय के लिए उस पर पटक देती है। इस बीच कई बार वह अपने नसीब को कोसती है।

अपने बचपन में वह ऐसी नहीं थी। दुबली पतली और हर पल उछलने वाली चंचल और उन्मुक्त। सूरज की धूप की तरह अपने आँगन में वह जवान हुई थी। आठ जमात पढ़ी लिखी थी बेशक पहाड़े याद करने के नाम पर उसका सर दुखता था। रस्सा कूदने में उसे कभी थकान न होती। बड़ी होने पर जब वह अपने दूल्हे की कल्पना करती तब सोचती उसका दूल्हा उसे कभी स्कूल नहीं भेजेगा, कभी कटवाँ पहाड़े नहीं पूछेगा और जीवन एक, दो, तीन, चार की सीधी गिनती की तरह पूरे सैकड़े तक सुख चैन से कटेगा। शादी हुई तब उसके मन में जीवन की उमंग पूरे यौवन पर थी। पति शुरू से ही थोड़ा मुटियाया हुआ था। उसे पहली रात मालूम हुआ उसका पति कविता भी करता है। उसका पति उसे छू छूकर देखता वह उसे जंगली भालू की तरह दबोच लेता। नतीजा यह हुआ पहले ही साल वह एक बच्चे की माँ बनी। बस फिर तो झड़ी लग गयी। जीवन की गिनती उलट पुलट हो गयी। हर साल एक बच्चा पैदा करते करते उसका चेहरा मुरझा गया, पेट लटक गया और चौबीस घंटों की झल्लाहट उसके चेहरे का स्थायी भाव बन गयी। भेड़िये की तरह खिसियाता पति, बंदरों की तरह उछलते बच्चे और बूढ़े बनमानुष की तरह जिंदा बाबा, सबसे उसे चिढ़ होने लगी। खिसियानी बिल्ली की तरह वह जीवन का खम्भा नोचने लगी। आटा गूँदते हुए वह बराबर बच्चों पर चीखती। भूखे अधभूखे बच्चे जल्दी जल्दी सुड़क सुड़क चाय पीते। दो-

दो फुलके अखबार म लपेटकर अपन स भी वजनी बस्तो म रखते और स्कूल के लिए निकल जाते।

इसके बाद शिवचरण अपना बिस्तर छोडता। इच्छा होती तो नहाता, नही तो हाथ मुह धोकर रसोई म जा बैठता। उधर बाबा के कमरे स आवाजें आती

'बहू! एक गिलास चाय ता दे जा!'

बहू अपन पति को गस के लिए लताडती।

जिस दिन पति तनख्वाह के पैसे अपनी पत्नी के हाथ पर रखता उस दिन वह पैसे बहुत सभालकर अपने सीने स लगा लेती। उस दिन घर म पराठे बनते। और रात को योजनाएँ—अँधेरे भविष्य की। अधर म नटकी हुई जिदगी की बच्चो की लिखाई-पढाई की। पति का पेट अक्सर खराब रहता, फिर भी वह ठूस ठूसकर खाता और ग्यारह बारह बजे वह घर स निकलता अपने काम के लिए।

शिवचरण सदा जीवन को स्थायित्व दने की जोड तोड मे लगा रहता। दिन-भर लोगो से मिलता, पुराने टायर खरीदता बिना पैसो क नये कामो के बारे म सोचता साल छ महीने मे एकाध कविता लिखता। लक्ष्यहीन जीवन को किसी भी किनारे लगा देने की आस मे वह भीतर ही भीतर खत्म होने लगा।

उसके जाने के बाद बाबा के कमरे स फिर आवाजें आती, बहू! एक गिलास चाय तो दे जा!'

हाथ पाव पटकते हुए बहू रसाई से ही चिल्लाती हां हां एक गिलास क्यू पूरी बारटी बनाकर ला रही हूँ रोज पहाड खोदते हो न '

एक बिना हैंडिल का अछूत कप वह बाबा क सिरहाने रखे स्टूल पर रखती और बडबडाती घर म धोने के कपडे समेटने लगती।

धीरे धीरे बाबा चाय को घूट लेत और बीते दिनो की याद मे खो जाते। दो बूढी आखें जब अतीत के गर्भ मे झाकती, दुख और विद्रोह मे कुलबुलाता बचपन घुटनो के बल रेंगता सजीव हो उठता। चारपाई पर पडे असहाय से वे मां की गोद का अनुभव करते। माथे पर एक साथ कई दरारें उभरती। लम्बी और सघर्षपूर्ण जिदगी की जद्दोजहद के बदले पूरी पीठ दर्द मे कराह उठती।

एक समय था जब बाबा का घर मे पूरा सत्कार था। काम से वापस आते ही बच्चे बाबा से लिपट जाते। शिवचरण पानी का गिलास लाकर देता और बहू गरमा गरम रोटियां परोसती। तब बाबा के कमरे म छुट्टी के दिन बैठक जमती थी। गली के सब बुजुर्ग आते। हुक्का गरम होता और सब अपने दुख-सुख की चर्चा करते। सत्ते के बापू कहते इस देश का तो बस भगवान ही मालिक है जहा जाओ वही घूस और महँगाई कुछ दिन बाद लोग खाना ही छोड देंगे तब बम्बो और बारूद की खेती होगी शिब्बू के बापू।'

खाने की बात पर बाबा को ध्यान आता और वे आवाज लगाते, राधे

राधे बेटे जरा सुनना।'

राध आता और बाबा अपनी जेब से कडकता एक दस का नोट उसे देते और कहते 'जा मेली की दुकान स गरमा गरम जलेबी ले आ ।'

जलेबियाँ आती सब खाते बच्चे भी, और बाबा के आनन्द की सीमा न रहती। फिर बातें होती। मास्टरजी बोलते, 'किस पे विश्वास करें आजकल, हर पारटी मे चोर भरे हैं, और ये हमारे नौजवान पिचका हुआ मुह लिए बस धुआँ उडाते मिलेंगे गलियो मे छिप छिप के मेरा लडका छ साल से धक्के खा रहा है ।'

कोई कहता, 'शिब्बू के बापू कल रात गुप्ता के लडके की बहू जल मरी, कितना रुपया दिया था बेचारी के बाप ने ।'

बीते दिनो की याद बाबा के शरीर म प्राण फूक देती। कितनी हिम्मत से उन्होने यह मकान खडा किया था। पर धीरे-धीरे जिंदगी का अर्क निचुड गया। हाथ-पाँव ढीले पडे तो शिवचरण को बाबा के दोस्त खटकने लगे। सारा जीवन धीरे धीरे इस कमरे मे सिमटता चला गया।

कुछ ही दिन पहले घर मे नया टी०वी०आया था। बच्चो ने पूरी गली मे हल्ला मचा दिया। बहू फूली न समायी। शिवचरण ने खुद दीवार पर चढ़कर एन्टीना लगाया। कई बार बाबा की आवाज उस कमरे तक आयी, 'बहू ! शिवचरण राधे कौन आया है ?'

उधर किसी का ध्यान नही गया। बाबा ने बहुत चाहा जब नही रुका गया तब धीमे धीमे लाठी टेकते वे उस कमरे मे आये। अबोध बच्चे की तरह टी० वी० पर तस्वीर देखकर मुस्कुरा उठे। एक अजीब-सी गुदगुदाहट उनके भीतर मचल रही थी। चश्मे के भीतर से चमकती बूढी आँखें । बच्चे बाबा स लिपट गये। वे गिरते गिरत बचे। कनखियो से ही उन्होने बेटे और बहू को देखा। वे उन्हे ही घूर रहे थे।

कौन-सा टेलीविजन है शिवचरण बहू हैं ? 'बेटे राधे मेरे लिए एक कुर्सी तो ला दे हैं ' बहू गुस्से म उठी। दूसरे कमरे स कुर्सी लाकर बाबा के पीछे पटक दी, 'लो ! तुम जरूर देखो ! बुढापे म भी चैन नही है एक पल का '

बाबा अचकचाकर रह गये।

अब बैठोगे भी या सर प खडे रहोगे 'यह शिवचरण की आवाज थी। उनके इकलौत बेटे की। जिसकी माँ बचपन म ही मर गयी थी और जिसे बाबा ने सब कुछ खोकर पाला था। उनकी आँखो के सामने अँधेरा छा गया। वहाँ स अपने कमरे तक पहुँचने मे उन्हे लगा सारी जिंदगी लग जायेगी। व्यर्थ की किसी चीज की तरह आकर वे अपनी चारपाई पर ढह गये। उन्हे लगा, बुढ़ापे के दाँत सीधे

छाती म गडे हैं।

बाबा का खाना शुरू से ही कमरे म भिजवाया जाता था। भूख उनकी बर्दाश्त के बाहर थी। खाना न मिलता तो वे छटपटा उठत। उस दिन शिवचरण कमरे म बैठा खाना खा रहा था ग्यारह बज चुके थे और बाबा के पास एक रोटी पहुँची थी, काफी देर तक जब रोटी नही आयी तो बाबा चिल्ला उठे, 'बहू! रोटी तो दे दे।'

'सबर करो! पहाड खोदकर नही आये हो सारे दिन यही पडे रहत हो पहले इन्हे दे दू।'

अन्दर ही अन्दर बाबा की भूख मर गयी। सूइयाँ सी उनके दिल को बेधती चली गयी। वे उठे धीमे धीमे रसोई तक आये और थाली आगन मे फेंक दी। बच्चो की तरह रोते हुए वापस अपने कमरे तक आये और दरवाजा भीतर से बद कर लिया, 'हे भगवान! उठा! उठा मुझे अपनी शरण म बुला।'

प्रार्थना जैसे कलेजे का चीरकर निकल रही थी। बाबा की इस हरकत पर बहू तिलमिला उठी और जोर से चिल्लायी, 'अरे नही खाना है तो मत खाओ! पूरे मुहल्ले मे ढोल पिटवा दो! हम तुम्हे भूखा रखते हैं! अरे बुढापे म हमारा मुह काला करोगे और क्या करोगे तुम।'

कुल्ला करता शिवचरण आँगन मे आया और पत्नी पर झल्लाया, क्या हुआ! क्या आफत टूट गयी!'

पत्नी न आगन मे पडी बाबा की थाली की तरफ उँगली उठाते हुए कहा, 'थाली फेंक गये हैं दरवाजे अन्दर स बद कर लिए हैं।'

शिवचरण ने खूब जोर स बाबा का दरवाजा खटखटाया। अन्दर से कोई आवाज नही आयी। झल्लाकर शिवचरण न अपनी पत्नी स कहा 'मरने दे जब भूख लगगी अपने आप दरवाजा खोलेंगे।'

बाबा के शरीर मे जितना भी खून था, पानी हो गया। जीवन की इस अँधेरी राह पर पुत्र के उदगार ने एक सन्नाटे की तरह बाबा का घेर लिया। अपना झोला उठाकर शिवचरण अपने काम पर चला गया।

रात आयी फिर दिन निकला। रात आयी फिर दिन निकला। फिर रात आयी फिर दिन निकला। लेकिन बाबा क कमरे का दरवाजा न खुला। इस बीच नन्हा अटू कई बार बाबा के कमरे के बाहर स चिल्लाता रहा बाबा दरवाजा खोल दो! बाबा दरवाजा खोल दो' कमरे के भीतर उस अधेरे के अलावा कुछ नहीं था। चौथे दिन शिवचरण की पत्नी के चिल्लाने पर शिवचरण ने फिर जोर स दरवाजा हिलाया। सन्नाटा। शिवचरण ने फिर हथौडा निकाला और दरवाजे पर बजा दिया। झटके से किवाड खुले। बरसा म ठहरी हवा का भभकारा निकला। सामने चारपाई पर बिछी दरी पर बाबा का मृत शरीर पड़ा था। बहुत देर रोने

के बाद उनकी पलकें आंख के निचले हिस्से से चिपक गयी थी। उनके चेहरे पर हल्की सी सूजन थी। शिवचरण ने बहू की तरफ देखा बहू ने शिवचरण की तरफ। बच्चे सहमे हुए कमरे म एक तरफ खड़े यह मजर देख रहे थे। सबस छोटा अट्टू बाबा के सिरहाने खडा उन्हे गौर स देख रहा था। अँधेरा कमरे मे मुक्ति का एह्सास करा रहा था।

घर की दिनचर्या फिर पहले की भाँति चलने लगी। बस कुछ दिन बाबा के कमरे के बाहर गली म एक गत्त का टुकडा लटका था, जिस पर लिखा था—

'मकान किराय के लिए खाली है।'

विस्फोट के बाद

❑ कमला चमोला

घंटी की ट्रिन ट्रिन सुन देवधर लपका। आंगन म एक खाकी लिफाफा सूखे पत्ते-सा हवा म फड़फड़ा रहा था। देखते ही वह समझ गया कि कहीं स इंटरव्यू का पत्र आया है। खोलकर देखा—शक सही निकला। पहले पहल जब एस लिफाफे उसके पास आते थे तब वह एकदम से उल्लसित हो उठता था, लगता था आधा मैदान तो फतह हो ही गया है। बार बार उसकी निगाह लिफाफे को सहलाती-सी रहती—लगता य नौकरी उसी के लिए है, खास उसी की योग्यताओं को ध्यान मे रखकर यह पोस्ट रची गयी है। पर अब न जाने क्यों वैसा कुछ अहसास नहीं हो पाता। इंटरव्यू दर इंटरव्यू देते देते अब वह समझ गया है कि ऐसे लिफाफे उस यान्त्रिक प्रक्रिया के एक अंग हैं जिसम अपनी तमाम कोशिशों के बावजूद उसका फिट होना बहुत मुश्किल है। व्यक्ति का चयन तो पूर्वनियोजित होता है बाद म उसी के लिए पोस्ट बनायी जाती है उस जैसे प्रत्याशी यूं ही कुछ दिन रेत के घरौंदे बनाते बनाते भविष्य के सुनहरे सपने रखने लगते हैं। अब तो लगता है य खाकी लिफाफे उसे नौकरी दिलवाने नहीं महज उसे मुंह चिढ़ाने आते हैं। अपनी तीन वर्ष की बेरोजगारी के अनुमान स वह इस फैसले पर पहुँचा था कि नौकरी तो ऊँची डाल पर लगा फल है जिसे देखकर लार बेशक टपका लो पर हाथ वो नहीं आयगा।

देवधर रसोई म आया तो वहां रखे हुए दो पारदर्शी लिफाफों से बरफी और नमकीन काजू झांकते देख समझ गया कि शायद आज भी बिट्टी को देखने वालों ने आना है। लड़की के लिए ब्याह और लड़के के लिए नौकरी—य दो ही सनातन बिंदु पूर्णता की सीमा रेखा हैं। बदकिस्मती स इन दोनों म जरा देर हो जाय तो सभी के सब्र का प्याला छलछला उठता है। दुर्भाग्य स उसके घर तो य दोनों समस्यायें मौजूद हैं। बल्कि यूं कहें कि सुरसा सी मुंह फलाये खड़ी हैं। बिट्टी को बी० ए० पास किये चार वर्ष होने को आये पर कहीं ब्याह का जुगाड़

नही बैठ पाया। उसे भी तो एम० ए० करके चप्पलें फटकारते तीन बरस होने को आये हैं पर एक अदद नौकरी नही जुटा सका वो अपने लिए। अदर गया तो देखा बिट्टी अपना फिरोजी सिल्क का सूट प्रेस कर रही है। जब पहली बार बिटटी को देखने वाले आने थे तब मिलवाया था माँ ने यह सूट। बाबूजी तो इतना महँगा सूट खरीदने के पक्ष मे नही थे पर माँ ने अपने स्त्रीजनित अनुभवो के आधार पर तर्क दिया था, 'अच्छे कपडो का बडा असर पडता है। चेहरे-मोहरे की छोटी-मोटी कमियाँ भी ढक जाती हैं। फिर लडकी की किस्मत का फैसला होना है। सौ पचास लग जाने से कोई फर्क नही पडता।' पर लडके वालों की नजर मे शायद इस 50 रुपये मीटर वाले सूट की कोई अहमियत नही थी। उनकी घाघ नजरें बिटटी की रगत को ही तौलती परखती रही और नकारात्मक जवाबो का जो सिलसिला चला वो अब तक बदस्तूर जारी है। ध्यान से बिटटी का चेहरा देखता—जरा दबी हुई सी साँवली रगत है बिटटी की पर इससे क्या, उसकी बडी-बडी भावप्रवण आँखें हैं, क्या ब्याह के बाजार मे लडकी को सिर्फ उजले रग की ही कसौटी पर तोला जाता है? और फिर रिश्तो को ठुकराने वाले खुद कौन से दूध के धोये थे! अलीगढ़ वाला खुद तो उलटा तवा था। पर चाहिए थी आटे की लोई-सी गोरी कन्या। हुँह—ऐसे लोग भला क्या कदर कर पायेंगे बिट्टी की। बी० ए० प्रथम श्रेणी से पास बिटटी मे जो कुछ है वह क्या हर लडकी मे सुगमता से मिल सकता है? वो तो घर की पारिवारिक स्थिति से मजबूर होकर बिटटी की पढाई बीच मे ही छुडवानी पडी और इसका जिम्मेदार शायद घर का हर शख्स है। पिताजी की रिटायरमेंट, उसकी बेरोजगारी माँ का सदा से चला आ रहा रोगी शरीर—ये सब कारण पर्याप्त थे बिट्टी की पढ़ाई छुड़वाने के लिए। प्रथम श्रेणी मे बी० ए० पास बिटटी को जब वो बर्तन रगडते देखता तो अपराध बोध से भर उठता। उसकी भी तो नौकरी नही, किस मुह से सिफारिश करता बिट्टी की। एक बार दबे मुह से बाबूजी से कहा, बाबूजी, बिट्टी को एम० ए० तो करने दीजिए, इतनी होशियार है।'

'एम० ए० करके तुमने ही कौन-सा किला फतह कर लिया है—दो साल से निठल्ले घूम रहे हो। जब निठल्ले ही घूमना है तो एम० ए० क्या और बी० ए० क्या।'

उसका मुह अपमान से स्याह हो आया था। बाबूजी उस पर यू ताने कसते हैं मानो वह अपनी मर्जी से बेरोजगार है। क्या वह नही चाहता कि जल्दी से जल्दी उसकी नौकरी लग जाय और इस जलालत भरी जिंदगी से उसे छुटकारा मिल जाये। किन किन महकमो की खाक नही छानी है उसने कहाँ कहाँ अप्लाई नही किया पर एक अदद नौकरी नही पा सका। छोटी से छोटी नौकरी के लिए भी ये सोचकर आवेदन पत्र भरे कि एक बार उसका पाँव भर टिक जाय और उसके

मत्थे से बेरोजगारी का ठप्पा हट जाये फिर वह बेफिक्री स बेहतर जगह तलाशने का प्रयास जारी रखेगा—पर ऐसी नौकरी भी वहाँ जुटा सका अपन लिए। वहाँ उसकी योग्यता और उच्च शिक्षा आडे आ जाती। बोला जाता, 'आप अपनी लियाकत इस अदनी सी पोस्ट पर क्यो जाया कर रहे हैं। आपका तो इससे बेहतर बीसिया जगह मिल जायेगी। कम पढे लिखे लोगो का हक तो न छीनिये।'

'अजीब मुसीबत है' वह झल्ला पडता। छोटी नौकरी उसके योग्य नही बडी नौकरी के योग्य वह स्वय नही है फिर वह जाये कहाँ? कौन सा वो सतुलित बिंदु होगा जहा वह थिर हो सकेगा। अच्छी नौकरियाँ तो भाई भतीजावाद और रिश्वतखोरी के जोर से यू भर जाती हैं जसे शतरज की गोट।

'वहाँ खडा खडा क्या कर रहा है देवू जा राशन की चीनी ले आ।

माँ के हाथ से राशन काड, थला और पसे लेकर वह चल पडा। उसे कालेज के अलमस्त दिन याद आ गये, तब कभी अगर मा उसे राशन की चीनी लेने को बोलती थी तो वह भडक उठता था थैला लटकाये राशन की क्यू म खडे होना उसे अपनी तौहीन लगता था। पर अब एस कई काम वह बिना ना नुकर किय खामोशी से कर देता है। अपनी बेरोजगारी की भरपाई का कोई रास्ता वह नही छोडता। बिटटी भी तो खामोशी से घर के कामो मे जुटी रहती है। पहले वो भी मा द्वारा काम बताय जाने पर ठुनकने लगती थी पर चार पांच जगह से रिश्ते का नकारात्मक जवाब आन के बाद वह भी जस अपराध बोध स भर उठी है। स्वय को घरवालो पर बोझ सा समझन लगी है। माँ बाबूजी चाहे उसे न समझ पाय हो पर वह तो जैसे बिटटी के अ तमन तक झाँक आया है। जानता है जितनी अहमियत उसके लिए नौकरी की है उतनी ही बिट्टी के लिए ब्याह की है।

डिपो पर लम्बी कतार लगी थी। बामुश्किल उसका नम्बर आ सका। इसके बाद वह एक सावजनिक पुस्तकालय म बठकर अखबार के पन्ने पलटने लगा। नौकरी की तलाश अक्सर यही करता है वो। उसकी खाली खाली दिनचर्या का य एक सरस टुकडा होता है। कही अपने योग्य रिक्त स्थान पा जाता है तो उसकी आँखो मे एक चमक सी आ जाती है। मन मे आशा का सचार हो उठता है। पर सा थ ही कई समस्यायें भी सिर उठान लगती हैं। आवदन-पत्र मँगाने के लिए पैसे दरकार हैं और यह काम बहुत मुश्किल और तनावपूण लगता है, बाबूजी से पस माँगन की ताब नही है उसम। व पसो के साथ साथ कुछ जली-कटी चुभन वाली बात कहने से बाज नही आते। माँ बोलती तो कुछ नही है पर पस थमाते समय एसा ठडा नि श्वास भरती है कि वह अपराध बोध से भर उठता है। माँ के निश्वास उसके सीने म फफोले बनकर उभर आत हैं। अपन आपको कोसत हुए वह सोचता है एस समय जबकि उसे श्रवण पूत की तरह माँ के हाथ म सौ सौ

के नोट रखने थे वह स्वयं ही हाथ पसारे खड़ा रहता है। घर की मजबूरियाँ वो समझता है। सिर्फ पेंशन के बूते पर गृहस्थी को चलाना आसान काम नहीं है। अपनी जान में बाबूजी सदा नियोजित ढंग से चले। उस जमाने में भी 'हम दो हमारे दो' वाले सिद्धांत पर चलते हुए दो अदद बच्चों पर ही पूर्णविराम लगा लिया। सर्दियों की गुनगुनी धूप में खाट में अधलेटे बाबूजी कहते, 'अपना तो सब कुछ रामजी की दया से ठीक चल रहा है। इधर मेरी रिटायरमेंट हुई उधर देवू पढ़ाई खत्म करके नौकरी से लगा। बिट्टी का ब्याह फंड के पैसों से हो ही जायगा।' पर बाबूजी की 50 प्रतिशत बात ही सच निकल पायी। रिटायर तो वे हो गये पर देवधर की नौकरी न लगी। अब तो उसकी बेरोजगारी के लम्बे तीन वर्षों ने उनके अन्दर निराशा के साथ-साथ झुंझलाहट भी पैदा कर दी है। सारा दिन घर में उनकी उपस्थिति देवधर को और देवधर की उपस्थिति उन्हें असहज बनाये रहती है। इसलिए वह अक्सर बाहर के कामों में ही स्वयं को व्यस्त रखकर बाबूजी की जलती सलाख सी आँखों से दूर रहने का प्रयास करता है। बाबूजी तो बिट्टी के साँवलेपन को लेकर नकारे गये रिश्तों का गुनहगार भी उसे ही मानते हैं। अक्सर बोल देते हैं—

'अरे जिन्हें पता हो कि लड़की का बाप रिटायर हो चुका है, बड़ा भाई तीन साल से बेरोजगार है वहाँ कोई किस आशा से रिश्ता जोड़ेगा। भाई, अच्छी नौकरी पर ही तो रिश्ते खुद चलकर आते हैं।' उसका मन होता है चीख पड़े— 'भाई की नौकरी बहन का रंग तो उजला नहीं कर सकती?' पर आदतन वह चुप रहता है, जानता है घर की हर अवांछित घटना का बाबूजी घुमा फिराकर अक्सर उसी पर आरोपित कर देते हैं। क्या उसे कम चिंता है बिट्टी की, चौबीस पार कर चुकी है उससे बस एक ही बरस तो छोटी है। एक-दो बरस और अगर इसी तरह गुजर गये तो ब्याह के बाजार में बिट्टी की कुछ भी कीमत न रह जायेगी। वो अभी से निराश हो गयी है। पहले जब उसे देखने वाले आने होते थे तब बिट्टी के चेहरे पर सलज्ज मुस्कान छा जाती थी। गालों पर सांवलेपन के बावजूद सुर्ख गुलाब खिल जाते थे, गुनगुनाते हुए तैयारियों में लगी रहती थी। पर अब लगातार नकारात्मक जवाब सुन सुनकर उसका मन भी जैसे भर गया है। सुबह किस मशीनी ढंग से सूट प्रैस कर रही थी—जैसे महज एक औपचारिकता निबाह रही हो।

वापिसी में वह नरेश से इस शर्त पर पचास रुपये ले आया कि राज्य सरकार से मिलने वाली बेरोजगारी भत्ते की पहली किश्त वह उसे दे देगा। नरेश भी उसका ही सहपाठी था पर वह अपेक्षाकृत खुशकिस्मत रहा। कुल डेढ़ बरस की बेरोजगारी ही देखी उसने, अब छोटी सही पर एक अदद नौकरी तो जुटा ही ली उसने अपने लिए। इन पचास को मिलाकर दो सौ रुपये कर्ज हो गया है उस पर

नरेश का। नरेश ने ही जोर दन पर बेरोजगारी भत्त के लिए आवदन-पत्र दिया था। उसने सोचा—कम स कम दस-बीस रुपया के लिए तो माँ-बाबूजी क आग हाथ नही पसारन पड़ेंगे। घर म जब वह फार्म भर रहा था तो अचानक बाबूजी आ गये और जेलरो की तरह तहकीकात करने लगे, 'क्या कर रह हो?'

'नौकरी के लिए आवेदन-पत्र भर रहा हूँ।'

'पसे नही माँगे तुमन ?' बाबूजी ने टेढ़ी नजरो स उस घूरा।

'हैं मेरे पास।'

'कौन सा कारू का खजाना हाथ लग गया ?' बाबूजी का व्यग्य भरा स्वर उस अदर तक बींध गया।

स्वर की तल्खी पर बामुश्किल काबू पाकर वह बोला, बेरोजगारी भत्त के लिए आवेदन पत्र भरा था मैंने।'

'अपना अपना नसीब है' पलग म लेटी माँ न गहरी उसाँस भरी, 'किसी को तनख्वा मिलती है तो किसी के हिस्स मे खरात का पसा आता है। उसका मन हुआ बोले—ये खरात का पसा नही है। उस नौकरी देना सरकार की जिम्मदारी है जिस पूण न कर पाने के एवज मे ही उस य पैसा दिया गया है। दोपहर वाले साक्षात्कार के लिए जब वह डिग्री फाइल म रखने लगा तो उसक होठो पर एक फीकी मुस्कान सी आ गयी। बिटटी का फिरोजी सूट और उसकी डिग्री विवाह और नौकरी के लिए महत्वपूण हथियार होते हुए भी क्रमश अपना पनापन खोते जा रहे हैं। न बिटटी का महँगा सिल्क का फिरोजी सूट उस एक पति दिलवा सका और न प्रथम श्रेणी की उसकी डिग्री उस एक अदद नौकरी दिलवा सकी। बिट्टी अपना सूट हैंगर म टाँग रही थी। हर बार क किस्स की वही घिसी पिटी पुनरावत्ति होगी। हर बार वही सब औपचारिकताये तो निबाही जाती हैं। लडके वाले आत हैं, फिरोजी सूट म सकुचाती बिटटी चाय की ट्रे लकर आती है बिट्टी को देखत ही लडके वालो के चेहरो पर जो ऊब और बेजारी क भाव छा जात हैं दवधर स छिपत नही पर माँ ये सब न भापकर बिटटी की विरुदावलि गाने में लग जाती है—

हमारी विदुला तो बडी हाशियार है बी० ए० फस्ट आयी थी। वो तो हमने ये सोचकर पढ़ाई छुडवा दो कि लडकिया को आखिर घर का कामकाज भी आना चाहिए। अब चाहे तो ये नौकरी कर ले—चाह घर बठकर गृहस्थी सभाले—हमन तो हर लायक बना दी है अपनी विदुला—जिस घर जायेगी—घर जगर-मगर कर उठगा। हैदराबाद का एक इजीनियर तो जी बिना दहेज इससे ब्याह करने को कहता है—पर हम ही इतनी दूर नही भजना चाहत—हमारी भी तो इकलौती बेटी है। माँ के झूठ पर उस हँसी आन को होती है जिस बामुश्किल वह जब्त कर जाता है। उसी का सी किस्मत तो है बिटटी की, वह भी

तो डिग्रियां समेट पूरी सजधज के साथ जाता है इंटरव्यू देने पर नतीजा सदा सिफर ही रहता है।

दोपहर उसका एक साक्षात्कार था। अपनी डिग्री और आवश्यक कागज समेट रहा था कि माँ बोली, 'शाम को इलाहाबाद वाले आने वाले हैं, समय से घर पहुँच जाना।' उसके होठों पर एक क्षीण मुस्कान सी आ गयी। तो उसका और बिट्टी के भविष्य का फैसला आज साथ साथ ही होना है। घर से निकलने लगा तो आदतन माँ को सूचना दी, मा मैं जा रहा हूँ।'

'अच्छा ।' रसोईघर से माँ का लापरवाही से भरा सपाट स्वर आया। पहले पहल जब वह इंटरव्यू देने जाता था माँ उसके माथे पर रोली लगाकर दही-गुड़ खिलाती थी। फिर शायद बार बार उस निरर्थक शगुन की पुनरावृत्ति करना उन्हें गैरजरूरी लगने लगा। खुद उसकी मन स्थिति भी अब पहले सी कहाँ है। पहले उसका मन अबूझी घबराहट से उद्वेलित रहता था। पर अब इंटरव्यू देते देते उसका मन भी पत्थर सा संवेदनहीन हो गया है। अब इंटरव्यू देने और राशन की चीनी लाने में उसके लिए खास फर्क नहीं रह गया है। जानता है ये साक्षात्कार महज औपचारिकतायें हैं फिर भी आशा का न जाने कौन सा अदृश्य सूत्र उसे हर बार अपनी ओर खींचता है और वह भी सहज भाव से चल देता है। जूते की एक कील उसे बार बार चुभ रही थी। ऐसे में तो बस स्टाप तक पहुँचना ही मुश्किल हो जायेगा। उसने जेब टटोली, किराये के अलावा चार रुपये और थे उसके पास। चाय के लिए दो रुपये बचा ले तो भी बकाया दो रुपये में बूट पालिश कराकर कील ठुकवाई जा सकती है। मोची के सामने जूता सरकाकर उसने टायरसोल की बेडौल सी चप्पल में पाँव फँसा लिया।

'सोल बिल्कुल घिस गया है साब—कहो तो नया लगा दूँ—दस रुपये में एकदम नय-नकोर कर दूगा जूते ।'

'अभी नहीं अभी मुझे देर हो रही है ।' मन ही मन मोची की नादानी और अपनी मजबूरी पर उसे हंसी आने को हुई। सोल लगवाने के लिए ही पैसे होते उसके पास तो बस की धक्कम धक्का की जगह वह टक्सी से न चला जाता, कम से कम पैंट की क्रीज तो सलामत रहती। बूट पहनकर वह बस स्टाप की ओर बढ़ गया।

अब वह आरामदायक ढंग से चलता सोच रहा था, कष्ट के बाद का आराम कितना सुखद होता है। बस स्टॉप पर लम्बी क्यू देख मायूसी में वह क्यू के अंतिम छोर में जाकर खड़ा हो गया। तभी घरघराकर बस रुकी तो क्यू की औपचारिकता छोड़ सब बाड़े से छूटी भेड़ों के रेवड़ की तरह बस के दरवाजे की ओर लपके। उसने दो बार आगे बढ़ने का प्रयास किया पर दोनों बार भीड़ ने उसे पीछे धकेल दिया। स्टाप पर अब आठ-दस आदमी ही रह गये थे। हर जगह

समय ही आगे निकल जाते हैं उसने सोचा । अब तक तीन चार और नये व्यक्ति आकर क्यू में लग गये थे। उस इसी आन का हुई इस समय कसी शराफत और शालीनता से खडे हैं—अभी बस आयगी तो सारी शराफत ताक पर रखकर उग्रता से एक दूसरे को धकेलते हुए बस की ओर लपकेंगे। तभी बस आकर रुकी तो एक बार फिर पहले वाले दृश्य की पुनरावत्ति हुई पर इस बार धक्कमधक्क के बीच वह किसी तरह बस म प्रविष्ट हो ही गया। एक कोने म सिकुडकर वह भीड से अपने कपडे बचाने का व्यथ प्रयास करने लगा। अपने गन्तव्य पर जब वह उतरा तो पैंट की हालत देखकर उसका सिर धुनने का मन हुआ। कमीज जगह-जगह स मुचड गयी थी जतो पर धूल लिपटी थी—पैंट की क्रीज म कई खम आ गये थ। उसने जेब से रुमाल निकालकर अपने बूट पोंछे, हाथ से पैंट की क्रीज सीधी करी और चल पडा।

कक्ष के बाहर कई प्रत्याशी बेंच पर बैठे थे। वह भी बैठ गया। उसने सबके चेहरो पर सरसरी नजरें फिरायी। सभी चेहरे गमगीन और गभीर थे। बेरोजगारी के सबके अपने अपने कडवे तीखे अनुभव होंगे। नौकरी की अनिवार्यता सभी के लिए होगी। न जाने क्यो इस समय उसके मन की उद्वेलना को कुछ शान्ति-सी मिल गयी थी लग रहा था वह एक अकेला ही बेरोजगार नहीं है, उस जसे बीसियो और भी हैं। चपरासी अब एक एक करके नाम पुकारने लगा था। उसने अपने कागजो पर सरसरी सी नजर फिराई। उसका नाम पुकारा गया तो सभलकर वह अदर गया। बोर्ड के सदस्यो का अभिवादन करके बैठ गया। ये चार भाग्य विधाता हैं उसके—

'कहाँ के रहने वाले हो ?'

'कितने भाई-बहन हैं ?'

एम० ए० किये कितने वर्ष हो गये?'

'कौन से कालेज से ?'

रामजस स ऊलजलूल से असबद्ध प्रश्नो स उकताकर वह सोच रहा था सीधे से साक्षात्कार क्यों नहीं ले रहे ये लोग ! आखिर प्रमुख लिपिक का पद है, कुछ विषय से सबधित प्रश्न भी तो पूछे।

अब आप जा सकते हैं पत्र द्वारा आपको निर्णय से अवगत करा दिया जायगा।' निढाल कदमो से वह बाहर आ गया। इस तरह के टरकाऊ साक्षात्कार वह पहले भी कई दे चुका था और उनका नतीजा भी उसे पता था। दोबारा वह अपने स्थान पर बैठ गया। उसके बाद एक युवक का नम्बर था। युवक को अदर प्रविष्ट हुए अभी दो मिनट ही हुए थे कि उसका आक्रोश से भरा उच्च कठ स्वर तिरता हुआ बाहर तक आया ये कसा इटरव्यू है—ऊलजलूल प्रश्न पूछने के बजाय कुछ सीधी ठोस विषय की बातें क्यों नहीं पूछते । मजाक बना

रखा है ।'

'देखिये ।' एक समझाता-सा स्वर आया ।

'क्या दखिये हम अधे हैं क्या, नजर नही आता तब से आप ऊटपटाग प्रश्न पूछ रहे हैं कहाँ पैदा हुए कहाँ पढ़े किस शहर के हैं—विषय से सबधित एक भी बात नही पूछी ।'

'तो अब पूछ लेते हैं आप शात तो होइये ।'

'ये औपचारिकतायें रहने दीजिये ।' युवक का स्वर उच्च से उच्चतर होता जा रहा था, हमे क्या पता नही कि इस पद पर थर्ड डिवीजन पास विधायक के भतीजे का चुना जाना पहले ही नियत हो चुका है—आप लोगो का राज है लियाकत ताक मे रखकर जिसे मर्जी चुनिये मगर फिर हम लोगो को क्या बुलाया गया है हमारे समय और धन की क्या कोई कीमत नही । दस रुपये टैक्सी भाडा देकर हम यहा पहुँचे हैं इतना ही वापिसी मे लगेगा फार्म भरने म भी दस-पद्रह रुपये लग जायेंगे—वो पैसा क्या आप देंगे ? बेरोजगारो से ये कैसा चदा उगाह रहे हैं आप ?'

रामधन ' एक कठोर आवाज गूजी, 'बाहर ले जाओ इन साहब को, इनका तो दिमाग खराब हो गया है ।'

'दिमाग खराब है आप लोगो का ' युवक का स्वर अब चीखने की पराकाष्ठा पर जा पहुँचा था । 'बाहर एक से एक योग्य प्रत्याशी उम्मीद लगाये बैठे हैं पर चयन होगा विधायक के थर्ड डिवीजन पास भतीजे का धिक्कार है आप लोगो की चापलूसी और स्त्रैणता पर इस देश को रसातल म ले जा रहे हैं। नेताओ अफसरो के साथ आप लोग भी शामिल हैं इस षड्यत्र म ।' युवक तैश मे भरा बाहर आ गया । उत्तेजना के अतिरेक से उसका चेहरा लाल हो रहा था । माथे पर झूल आयी बालो की लट को झटके स पीछे फेंक तेज चाल चलता वह कक्ष से बाहर हो गया । सभी प्रत्याशी सनाका खाये किंकर्तव्यविमूढ से बठे थे। उलझन की सी स्थिति बरकरार थी । सब एक दूसरे का चेहरा देख रहे थे। इस विषय म फुसफुसाहट हो रही थी कि इटरव्यू दिया जाये या नही । युवक की बातो म शतप्रतिशत सच्चाई है ये सबको पता था। बकाया प्रत्याशी भी अब साक्षात्कार देने के मूड मे नही थे और फिर एक फसले पर पहुँचकर वॉकआउट की मुद्रा म सब युवक के पीछे पीछे बाहर निकल आये। वह अपनी ही सोच मे डूबा चल रहा था। उस अनजान युवक के प्रति उसके मन म प्रशसा और श्रद्धा के से भाव पैदा हो गय थे। कितना निडर साहसी और स्पष्टवक्ता है मन मे खौल रही बातो को किस तरह बेखौफ उगलकर रख दिया। इस युवक जसे सौ-पचास भी हो जायें तो साक्षात्कारो मे चली आ रही धाँधलियाँ काफी हद तक कम हो जायें। सिफारिश, भाई भतीजावाद और रिश्वतखोरी के निर्द्वद्व प्रवाह

निर्निमेष देखता रहा फिर शिथिल कदमो से अपने कमरे की ओर बढ गया।

कमरे मे आकर वह निढाल सा बिस्तर मे जा पडा। उसकी कल्पना मे अब काजू बर्फी टूगते मेहमान, फिरोजी सूट मे चाय देती बिटटी बिटटी के गुणो के बखान म लगी माँ और मेहमानो के चेहरो पर छाये ऊब और नकार के से भाव—सब एकमुश्त ही छा गये। अचानक उसकी आख की कोर से एक अवश सा आँसू बहता हुआ टप से तकिये पर जा गिरा।

म कुछ तो रुकावट आये। पर कहाँ हैं उस जैसे लोग उस जसा दुलभ व्यक्तित्व है कितनों का। खुद वो भी तो कितना दब्बू है। इस तरह खुल्लमखुल्ला बात करने का साहस नही है उसम। पिछले साक्षात्कार म उसे भी तो पता था कि उस पोस्ट पर बोड के सदस्य के ही किसी रिश्तेदार का चयन होना है फिर भी उसन किस सुघडता और शालीनता से साक्षात्कार दिया था। काश उसम भी उस युवक जसी मुखरता होती। उसकी अवचेतना म अब भी युवक का लाल तम तमाया चेहरा छाया था। अपनी ही सोच मे गुम वह न जाने कब बस स्टॉप पर जा पहुँचा। धक्कमपेल के बीच उसन भी स्वय को बस क अदर ठेल दिया। अब न क्रीज बिगडने की चिंता थी और न जूते खराब होने की। इसी तरह सम्मोहित-सा वह न जान कब अपने घर भी पहुँच गया। कमोबेश उसी समय घर के सामने एक टैक्सी रुकी और उसम स सभ्रात स नजर आने वाले एक अधेड दम्पति और एक सुदर्शन सा युवक उतरा। देखते ही वह समझ गया कि य लोग बिट्टी को देखन आये हैं। इतनी देर म बाबूजी उनकी अगवानी करके अन्दर आँगन तक ले गय। एकाएक उस लगा उसके अदर कुछ उबल खौल रहा है बाहर आने को बेताब है अगर शीघ्र ही ये सब कुछ बाहर न आया तो उसके अदर एक विस्फोट हो जायगा। वह तेज कदम धरता आँगन मे आया और बोला 'सुनिये!' आगतुक दम्पति के साथ बाबूजी भी ठिठक गये और प्रश्नवाचक दृष्टि स उसे घूरने लगे। बाबूजी कुछ बोलते इसस पहल ही वह बिना किसी भूमिका के बोला देखिये—आप लोगो को पहल ही बता दू कि हमारी विदुला साँवली है। वैस सवगुण सम्पन्न है—किसी नसीब वाले के ही घर जायेगी। पर उसका रग वसा उजला नही है जैसा विवाह क बाजार मे अपेक्षित है।'

'देवू!' बाबूजी ने क्रोध और अविश्वास भरी नजरो स उसे देखते हुए बरजना चाहा। पर उसन जस कुछ सुना ही नही। अपनी ही रौ मे बोलता गया, 'अगर साँवलापन विवाह के लिए आपकी कसौटी मे कोई अयोग्यता नही है तभी देखने-दिखाने की औपचारिकताये निबाहिये वरना झूठमूठ का नाटक खलने स कोई लाभ नही।' आगतुको का चेहरा अपमान से लाल सा हो आया। अधेड व्यक्ति बाबूजी की ओर उन्मुख होकर बोला, ये सब क्या है? कौन है ये असभ्य लडका?'

जी—मेरा ही बेटा है' बाबूजी घिघियाये 'जवान खून है यू ही बेमतलब उफान खाता रहता है—आप लोग इसकी बातो पर ध्यान न दें। इसकी ओर स मैं आप लोगो से माफी माँगता हूँ—आइये-आइये। बाबूजी की घिघियाहट निरीहता की सीमा पर थी। नफरत से देवधर का सर्वांग थरथरा आया। बाबूजी तब तक अधेड व्यक्ति और युवक का हाथ थाम लगभग खीचते से अदर ले गये थे। वह जड बना जहा का तहाँ खडा था। कुछ दर वह हिलते हुए पर्दे को

निर्निमेष देखता रहा फिर शिथिल कदमों से अपने कमरे की ओर बढ गया।

कमरे मे आकर वह निढाल सा बिस्तर मे जा पडा। उसकी कल्पना मे अब काजू बर्फी टूंगते मेहमान फिरोजी सूट मे चाय देती बिट्टी, बिटटी के गुणो के बखान म लगी मा और मेहमानो के चेहरो पर छाये ऊब और नकार के से भाव —सब एकमुश्त ही छा गये। अचानक उसकी आंख की कोर स एक अवश-सा आंसू बहता हुआ टप से तकिये पर जा गिरा।

काला सूरज

☐ प्रेमसिंह बरनालवी

वह रेलिंग पर कोहनिया टिकाय नीचे कलकल बहती जलधारा को निहारता जल और जीवन के सबध मे तरह तरह की बाते सोच जा रहा था। सहसा उसने गदन ऊपर उठायी। एक जलती बुझती रोशनी पर उसकी आखे स्थिर हो गयी। 'देवधाम' वह मन ही मन रोशनी क शब्दो को दोहराने लगा। चल मन आज वही चल और कदम उधर बढा दिये।

नाम अनुरूप ही वह जगह थी। नदी का एक हिस्सा पानी देवधाम के आगे स बह रहा था। किनारे पर मखमली घास लगी थी जिसके बीच म बेगनवेलिया के फूलो की शोभा मरक्युरी लाइट मे देखते ही बनती थी। क्रिसमस पेडो के बीच नीली रोशनी और इन्द्रधनुषी बत्तियो वाले फुहारे क महीन जल कण उसके हृदय मे ठण्डक भरने लगे।

लॉन मे देवधाम नाम को साथक करती ध्यानमग्न महात्मा की मूर्ति थी। मूर्ति के चेहरे क भाव इतने सजीव थे कि वह मूर्ति और मूर्तिकार पर मुग्ध हो गया।

काउटर पर इकहरे बदन की खूबसूरत लडकी जो खुद किसी तलवार स कम न थी हाथ म मुल्लमा चढे कागज की तलवार लिए बैठी थी। उसन सडक किनारे कलात्मक खम्भे स कान लगा लिए। सगीत की धुनो के साथ कुछ अजीब किस्म की आवाजें उसके कानो म प्रतिध्वनित होने लगी। जस ही उसन खम्भे स कान हटाय उसकी नजर काउटर पर बैठी लडकी के चेहरे न टकरायी। लडकी मुस्करा रही थी। वह भी मुस्करा दिया। लडकी न पास आन का सकेत किया। उसने यत्रवत सकेत का पालन किया।

तुम दूर क्यो खडे थे?' लडकी ने उसकी आँखो म आँखें डालत उलाहने भरे स्वर म कहा। फिर हाथ की तलवार को आठो से लगा लिया। उस लगा तलवार उसके जिगर के आर पार हो गयी है। फिर भी साहस बटोरकर कहा, दरअसल यह

मेरी राह नहीं है। मैं एक पुजारी का बेटा हूँ और अक्सर एकान्त में अपने पिता की तरह उस चिरंतन शाश्वत सत्य की खोज किया करता हूँ।'

लडकी ने 'हूँ' कह अपनी नाजुक कलाई हिलाई। हीरे रत्नजडित चूडियों की झनकार से उसका रोम रोम झनझना उठा। लडकी ने तनिक व्यंग्य भरी मुस्कराहट बिखेरते हुए कहना शुरू किया, 'मित्र उस सत्य की खोज कहाँ करोगे? क्या इस दुनिया, इस धरती से परे? जो वर्तमान है उससे टूटकर? ध्यान से सुन! कोई सत्य शाश्वत नहीं होता। यह शब्द मूर्खों का झूठा अवलम्ब है जिस लिये अतीत की गली सडी व्यवस्था व मान्यताओं से चिपके रहते हैं। आज का सच कल का झूठ हो सकता है और कल का झूठ आज का सबसे बडा सच। अतीत मुर्दा है और भविष्य अजाना। बस वर्तमान की धारा में बह रहो। यही जीवन है। यही है चिरंतन शाश्वत सत्य का सार और नयी सदी का संदेश भी।'

उससे इसका कोई तर्कसंगत उत्तर देते न बना। लडकी ने अन्तिम चोट की, 'दुविधा तज!' और उसके ओठ होले होले तलवार की धार पर फिरने लगे।

उसे लगा जैसे उसके भीतर से कुछ कट रहा है जो उसे आहत किये जा रहा है। उसे पहली बार महसूस हुआ कि उसके दिमाग में कुछ फालतू चीजें जमा हो गयी हैं जिन्हें उसे फेंक देना चाहिए। उसने रूप लावण्य में खोये उसे अपना आप भोर में खिले कमल-सा लगा। फिर उसे महसूस हुआ कि उसका मन उलझन रहित हो गया है। वह लडकी के चाहे अनुरूप बन गया है।

वह अपने स्वभाव के विपरीत लडकी के अंग प्रत्यंग को निहारता बहुत कुछ सोचे जा रहा था। फिर उसे लगा जैसे उसकी सोच जड हो गयी है। उसने आँखें मूँद ली। उसे लगा जैसे उसने सुन्दर आकृति को आँखों में कैद कर पुतलियों का दरवाजा ठेल दिया हो।

तभी लडकी ने धीमे से तलवार उसकी गर्दन पर रख दी और उसे धीरे से सरकाने लगी। अभी वह मुश्किल से दो इंच ही सरका पायी थी कि उसने आँखें खोल दीं और गर्दन तान ली, 'तुम ऐसे ही आँखें मूंद बैठे रहो' लडकी ने बादामी आँखों का जादू बिखेरते हुए कहा।

'नहीं अब और नहीं।'

'यह देवधाम के नियमों के विरुद्ध है।'

'देवधाम के नियम क्या कहते हैं?'

देवधाम परम सुन्दरी के काम में कोई बाधा न दे।

'अगर कोई ऐसा करे तो!'

'उसका हश्र बुरा होता है।'

मैं वह हश्र भोगना चाहता हूँ।'

'मुझे तुम पर दया आती है।'

तो दया कीजिये।'

लडकी ने कुछ क्षण सोच लडके के भोले मासूम चेहरे की ओर देखकर कहा, 'देवधाम के नशे म भी तुम्हारी ज्ञानेन्द्रियाँ शिथिल नही होगी।'

'यह तो बहुत अच्छी बात हुई।'

'बहुत अच्छी बात नही। बेहोशी मे कष्ट झेलना कही सुखकर होता है अब भीतर जाओ।'

उसने एक झलक भीतर की देखी और फिर लौट आया। 'यह देवधाम नही है। शायद मैं गलत जगह आ गया हूँ।'

वह हँसी सूरज को चिराग कहने से वह चिराग नही बन जाता।'

'यहाँ अनाचार की बू आती है।'

लडकी ने अपनी माम सी अँगुली उसकी नाक पर रख दी और मुस्कराते हुए कहा, 'अब कहिये!'

उसने कहा कुछ नही। कुछ क्षण पहले लडकी के मुस्काने स गाल म बन गड्ढे की मुद्रा मे उलझा रहा। फिर जैस भीतर के बौनेपन से उभरने की गज स कहा, मरे मन मे एक बेहतर समाज की कल्पना है।'

'ढेरो आदमियो के दिमाग मे ऐसी कल्पनाएँ कुकुरमुत्तों का तरह उगती हैं और मिट जाती हैं। कल्पना के पीछे बल चाहिए। और जो बलवान होते हैं वे एसी बेहूदा कल्पनायें कभी नही करते।'

लेकिन मरी कल्पनायें मरी जान रहत खत्म न होगी। मैं इस अनाचार का पर्दाफाश कर दूगा' वह आवेग मे कहता जा रहा था, मरी बडे बडे समाजसेवियो से मित्रता है। धम स्तम्भ माने जाने वाले लाग अक्सर हमारे घर आते हैं। जन रक्षक पुलिस अधिकारीगण मेरे पिता का बहुत सम्मान करते हैं। आज की सबस बडी ताकत अखबारो तक मेरी पहुँच है। इन सबके जरिये मैं ।'

लडकी ने मुस्कराते हुए बात काटी, 'निश्चय ही तुम बहुत ताकतवर हो और साथ ही काम के आदमी भी। पर मित्र, देवधाम का तुम बाल भी बाँका नही कर सकत।'

'क्यो?' वह तनिक आवेश मे बोला।

'जिन लोगो की पहुँच के बल पर तुम इतने आशान्वान हो वे सब तुम्हें यही पहुँचे मिलेंगे। जिन्हे तुम अपना हथियार मानते हो वही तो हमारी ढाल हैं। विश्वास न आय तो देख लो। हमारे स्वामी के हाथ सत्ता के कागजी कानूनी हाथो स कही मजबूत हैं।'

प्रत्युत्तर म उससे कुछ कहते न बना। उस ख्याल आया पुलिस चौकी नम्बर 4 यहाँ से लगभग सौ गज दूर होगी। उससे कुछ फासले पर नवजीवन दर्शन' नामक एक सामाजिक सस्था है और सडक के सिरे पर सनातन जीवन धम का

बाड लगा है। उसके थोडा आगे दो पीर चौक के पास 'घर बाहर' नामक प्रसिद्ध दैनिक पत्र की इमारत है। उसन कुछ दबी-सी आवाज मे पूछा, 'तुम्हारा स्वामी कौन है?'

लडकी ने एक शीशे से पर्दा हटाया।

वह एकटक उस तस्वीर को घूरने लगा। उस इस तस्वीर और लॉन की मूर्ति के चेहरे म साम्यता लगी। बडे सख्त लहजे म कहा, 'मैंने इसे देखा है।'

'जरूर देखा होगा' कहकर वह अग्रेजी धुन म गुनगुनाने लगी। उसकी आँखों के आगे चलचित्र की तरह घूम रहा था, एक सती की समाधि पर पुष्पमाल्यार्पण का दृश्य, दहेज विरोधी अभियान के दिलकश पर खोखले नारो की गूज, झुग्गियो पर चलते दत्य से बुलडोजर, असहाय लोगो की चीखें, भडके दगाइयो द्वारा मौत का नगा नाच और वह दाँत पीसता चीखा, 'मुझे इससे सख्त से सख्त नफरत है।'

वह अपनी नाजुक उगली चटकाती बोली, 'ये नफरत प्यार, मान-अपमान से ऊपर हैं। ये शान्ति के वट वृक्ष हैं और आधी के घास, इसलिए वक्त के थपेडे मात्र इनकी पीठ थपथपाते गुजर जाते हैं।' कह उसन प्यार से हाथ उसके माथे पर रख दिया। उसने ठडी आह भरी और लडकी की ओर ललचायी आँखो से देखने लगा।

तभी एक खद्दरधारी नेता का आगमन हुआ। लडकी उसे देख हौले से मुस्कराई और लडके को भीतर जाने का सकेत किया। वह भला बालक सा भीतर चला गया। भव्य हॉल। छत दीवारें, फर्श सब काँच के। उसने पहली बार रोशनी के फुहारे देखे। जिन्हें वह पानी की बूदें समझ उनकी ठडक महसूसना चाहता वे रोशनी की किरणें होती। उसने पहली बार पिघली रोशनी देखी जो पल भर के लिए कौंधती, जिस्म म झुरझुरी सी भर देती और शून्य मे विलीन होकर अगले पल फिर कौंध उठती। उसके साथ वातावरण म ऐसा सगीत था कि उसका रोम-रोम उत्तजित हो उठा। शुरू मे उसे लगा यह सगीत उसकी बुद्धि की पकड स परे है पर जल्दी ही उस अहसास हो गया यह सगीत वर्तमान को, जो लडकी के शब्दो म सही जीवन था, भोग लेने का मधुर सदेश था।

एकाएक सगीत थम गया और उसके साथ ही रगीन रोशनियाँ गुल हो गयी। क्षण भर क लिए वहाँ गहन अधकार पसर गया। देवधाम सद अमावस की रात मे खण्डहर की कब्र सा साँय-साँय करने लगा।

तभी दूधिया रोशनी जगी। उस अपने गुलाबी हाथ पीले रक्तहीन से लगे। लगा जैसे किसी नाटक का पट-परिवर्तन हुआ हो। हर चीज उसे बदली-बदली-सी लगी। उस हॉल म ढरो चेहरे देखकर आश्चर्य हुआ जो शो-केसो मे सजे थे। उस उस नेता का चेहरा भी दिखायी दिया जो थोडी देर पहले आया था। हर चेहरा कभी खिलखिलाता तो कभी सर्द आह भरता उदास हो जाता। उसे यह सब बडा

अजीब लगा और इससे भी अजीब यह कि वहाँ केवल वही एकमात्र दर्शक था। शेष जितने भी लोग उसकी उपस्थिति में आये थे उन सबका अस्तित्व किसी न किसी शो केस के चेहरे में विलीन हो गया था।

तभी उसकी निगाह एक चेहरे पर पड़ी, उसने गरदन झटकी। तीन चार बार आँखें झपकी। ह यह कैसे हो सकता है! नहीं-नहीं। और वह बेतहाशा घर की ओर भागा।

'माँ माँ पिताजी कहाँ हैं?' उसके स्वर में तल्खी थी, बौखलाहट थी।

'यह तुम्हें क्या हो गया है तुम कैसी बहकी बहकी ।'

'मैं बिल्कुल ठीक ठाक हूँ। बस मुझे अपनी बात का जवाब चाहिए।'

'मन्दिर में हैं। वैसे उनके आने का वक्त भी हुआ चाहता है।'

वह मन्दिर की ओर भागा।

राह में लोग उसके पिता की श्रद्धा भक्ति कर्मनिष्ठा व कर्तव्य परायणता की बातें कर रहे थे। लोगों की आमद से उसने जान लिया कि देवता अब सुखासन (विश्राम) की स्थिति में है।

लगभग मील भर का राह था। उसका अनुमान सही था। मन्दिर के मुख्य द्वार पर बड़ा सा ताला झूल रहा था। पर उसे पिता कहीं दिखायी नहीं दिए। जरूर यहीं कहीं होने चाहिए। इसी उधेड़बुन में उसे मन्दिर के पुजारी के लिए बनाये निजी कमरे के दरवाजे का ख्याल आया। वह उधर हो लिया। न जाने क्या सोच बेआवाज दरवाजे से सटकर खड़ा हो गया। इसी में उसे ज्ञात हो गया दरवाजा भीतर से बन्द है।

तभी उसने एक दरार में झाँका। गुलाबी रोशनी। उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उसके पिता भावविह्वल से एक मूर्ति से आलिंगनबद्ध हैं। उसे यह बड़ा बेहूदा लगा। पर अगले पल उसने अपनी घटिया सोच के लिए खुद को धिक्कारा। अपने ने कहा मन्दिर में लोगों की उपस्थिति में देवता की पूजा महज एक औपचारिता है। असल पूजा तो आदमी के वे निज पल होते हैं जब आदमी हर किस्म के बंधन से मुक्त अपने ढंग से भाव व्यक्त किया करता है।

तभी उसके पिता ने मूर्ति का माथा चूमा और स्टूल पर रखी ताजे फूलों की माला मूर्ति के गले में डाल दी। उस अन्तराल में जब उसकी आँखें मूर्ति पर पड़ीं तो वह गिरते गिरते बचा। यह देवधाम के काउंटर वाली परम सुन्दरी की प्रतिमा थी। हठात् उसने मन ही मन कहा—सुन्दरी अब बस करो। वह इस मैं हालत में नहीं भाग सकता। मेरे विवेक की हत्या कर दो। तुम ठीक कहती थीं कहानी में कष्ट झेलना नहीं घुसकर होना है। उसे मदन सुन्दरी और गदर्भों को असवार का स्मरण कर अनायास मदन पर उनकी करने लगा।

उसे एक अजीब-सी झलक दिखाई दी। वह निरीह-सा खड़ा है और देवधाम

का स्वामी अपनी लोहे की मुट्ठियों मे उसकी फूल सी रूह लिए खिलखिलाकर हँस रहा है। फिर उसकी धड़ गायब हो जाती है और गदन एक खाली शा रेस म फिट हो जाती है। उसका चेहरा भी और चेहरो की तरह हँमा-रान लगता है। उस खडे खडे लगा जस वह किसी और ही धातु का आदमी बनता जा रहा है। उसकी आँखो मे चिगारियाँ निकलने लगी। वह दो कदम पीछे हटा और फिर पूरी ताकत स दरवाजे का धक्का दिया। दरवाजा कमजोर था उखड गया और इसस पहल कि पुजारी कुछ समम पाते लडक ने बिजली की तजी से उसे धक्का दिया और खुद मूर्ति म चिपक गया।

गुलाबी रोशनी को अँधेरा लील चुका था।

अजीब लगा और इससे भी अजीब यह कि वहाँ केवल वही एकमात्र दर्शक था। शेष जितने भी लोग उसकी उपस्थिति में आये थे उन सबका अस्तित्व किसी न किसी शो-केस के चेहरे में विलीन हो गया था।

तभी उसकी निगाह एक चेहरे पर पड़ी, उसने गर्दन झटकी। तीन चार बार आँखें झपकीं। हूँ यह कैसे हो सकता है! नहीं-नहीं। और वह बतहाशा घर की ओर भागा।

'माँ माँ पिताजी कहाँ हैं?' उसके स्वर में तल्खी थी, बौखलाहट थी।

'यह तुम्हें क्या हो गया है तुम कैसी बहकी बहकी ।'

'मैं बिल्कुल ठीक ठाक हूँ। बस मुझे अपनी बात का जवाब चाहिए।'

'मंदिर में हैं। बस उनके आने का वक्त भी हुआ चाहता है।'

वह मंदिर की ओर भागा।

राह में लोग उसके पिता की श्रद्धा, भक्ति कर्मनिष्ठा व कर्त्तव्य परायणता की बातें कर रहे थे। लोगों की आमद से उसने जान लिया कि देवता अब सुखासन (विश्राम) की स्थिति में है।

लगभग मील भर का राह था। उसका अनुमान सही था। मंदिर के मुख्य द्वार पर बड़ा सा ताला झूल रहा था। पर उसे पिता कहीं दिखायी नहीं दिये। जरूर यहीं कहीं होने चाहिए। इसी उधेड़बुन में उसे मंदिर के पुजारी के लिए बनाये निजी कमरे के दरवाजे का ख्याल आया। वह उधर हो लिया। न जाने क्या सोच बेआवाज दरवाजे से सटकर खड़ा हो गया। इसी से उसे ज्ञात हो गया दरवाजा भीतर से बंद है।

तभी उसने एक दरार से झाँका। गुलाबी रोशनी। उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उसके पिता भावविह्वल से एक मूर्ति से आलिंगनबद्ध हैं। उसे यह बड़ा बेहूदा लगा। पर अगले पल उसने अपनी घटिया सोच के लिए खुद को धिक्कारा। अचेतन ने कहा मंदिर में लोगों की उपस्थिति में देवता की पूजा महज एक औपचारिता है। असल पूजा तो आदमी के वे निज पल होते हैं जब आदमी हर किस्म के बंधन से मुक्त अपने ढंग से भाव व्यक्त किया करता है।

तभी उसके पिता ने मूर्ति का माथा चूमा और स्टूल पर रखी ताजे फूलों की माला मूर्ति के गले में डाल दी। उस अन्तराल में जब उसकी आँखें मूर्ति पर पड़ीं तो वह गिरते गिरते बचा। यह देवधाम के काउंटर वाली परम सुंदरी की प्रतिमा थी। हठात उसने मन-ही मन कहा—सुंदरी अब बस करो। वह हृदय मैं होश में नहीं भोग सकता। मेरे विवेक की हत्या कर दो। तुम ठीक कहती थीं बेहोशी में कष्ट झेलना कहीं सुखकर होता है। उसने गर्दन झुका ली और लड़की की तलवार का स्मरण कर अपनी गर्दन पर उंगली फेरने लगा।

उसे एक अजीब-सी झलक दिखाई दी। वह निरीह-सा खड़ा है और देवधाम

का स्वामी अपनी लोहे की मुट्ठियों मे उसकी फूल सी रूह लिए खिलखिलाकर हँस रहा है। फिर उसकी धड़ गायब हो जाती है और गर्दन एक खाली शो केस मे फिट हो जाती है। उसका चेहरा भी और चेहरो की तरह हँसता-रोना लगता है। उस खड़े खड़े लगा जैसे वह किसी और ही धातु का आदमी बनता जा रहा है। उसकी आखो म चिनगारियाँ निकलने लगी। वह दो कदम पीछे हटा और फिर पूरी ताकत से दरवाजे का धक्का दिया। दरवाजा कमजोर था, उखड गया और इससे पहले कि पुजारी कुछ समय पाते लडके ने बिजली की तेजी से उसे धक्का दिया और खुद मूर्ति स चिपक गया।

गुलाबी रोशनी को अधेरा लील चुका था।

—

बिल्ली

□ तारा पाचाल

वडे लडके और लडकी को साइकिल पर बिठाकर हजूरसिंह जब स्कूल रवाना हो गया तो लखी सुबक पडी। सुबकते सुबकते ही उसने गुस्से म भरकर निणय लिया कि आज या तो बिल्ली नही या वो नही। वह सारे काम छोड दरवाजे पर टकटकी लगाकर बैठ गयी। उसके हाथ मे नूण मिच रगडन वाला सोटा था। छोटा काका ठुनककर उसकी गोद म आ लेटा। वह उस दूध पिलाने लगी।

'पोटता भी ऐसे है जैसे दूध में उसे गोद म लिटाकर पुचकार-पुचकारकर पिलाती होऊँ। घुस गयी चुपके स और पी गयी तो इसम मेरा क्या कसूर ? और फिर कौन सा यहा कडाहे के कडाहे दूध उबलता है। गिलास भर दूध मुश्किल से आता है—उसम से दो वार की चा और बचा हुआ काके का। अब काका भी भूखा और मैं भी पिटी। आ जा, तुझे मैं पिलाऊगी रवडी आज। कहा मर गयी आज मरजाणी !

रब्ब सोन की बिल्ली मागेगा तो कहाँ से दूगी ? ना भी मांगे, पाप तो लगेगा ही और पाप स नरक मिलेगा।' लखी सुबकते हुए सोचने लगी, लेकिन रोज रोज की इस खिच खिच और मार खाने से तो रब्ब का नरक चगा।'

जिस तरह अधिक दु ख मे आदमी का कम दु खो वाले दिनो की याद मे राहत और सुख मिलता है—उसी प्रकार लखी का मन भी मार खाने के कारण बार बार भटक रहा था, *यहाँ स तो पिण्ड म ही चगा था। वहाँ बथुआ कुदरा, चोलाई* तो खेतो से मिल जाता था। ना भी मिलता तो बडे सरदारो के घर से लस्सी ले आती थी जिसके साथ लूणी रोटी भी परसादा हो जाती थी। पर यहाँ तो गुड हा दा तो पूडे पो दी ले आ दी तेल उधारा पर की करां आट्टा ही नही वाला हाल है।'

लखी का सुबकना धीरे धीरे खीझ म बदलने लगा 'रोज रोज का झगडा। इतनी चीनी कैस लग गयी ? घडी पक्का आटटा इतनी जल्दी कस खत्म हो गया ?

तू इतना घी क्यों खच करती है ?'

'हूं ! जैसे मैं रात को उठकर खाती होऊँ। इतना सडाधला घी ! रोटी भी चुपडन को मन नही करता । सूखी खाती हूँ फिर भी झगडा ।'

'वहाँ बडे सरदारा के पशुओ का सानी पानी ही तो करना पडता था। देर-सवेर सब कुछ खाने पीने को मिल तो जाता था। पर नही—शहर मे नौकरी करनी है। शहर मे बच्चो को पढाऊँगा—अफसर बनाऊगा। पिण्ड मे अब वैसे भी गरीब का गुजारा नही। ले अब मजे और मार रोज रोज लखी को। बहाना बिल्ली का। यहाँ स्कूल मे चपरासी ही तो लगा है—वह भी सरकारी मे नही। हुम—ला पटका यहाँ ग-दे नाले की सडाँध म । सडाँध तो सडाँध, कोई-सा बच्चा कभी लुढक गया तो मकान भी लिया तो यहाँ नाले पे। जैसे शहर मे और कही मकान ही नही है। आज वहाँ मर गयी यह बिल्ली की बच्ची ! अच्छा है आज ना ही आये तो मेरे हाथो पाप तो नही होगा।' सोचते सोचते ही उसने 'सीऽ' किया और गोद म लेटे काके को झिंझोड दिया। दूध ना आने के कारण उसने दाँत गडा दिये थे।

'मुझे चाहे नरक ही मिले पर तुझे आज सुरग मे जरूर पहुँचाऊँगी नासपिट्टी, तुझ आज मैं नही बख्शने की काले मुह वाली। शुरू शुरू म ता गाली खाकर ही बात टल जाती थी पर अब तो एकदम मारने को दौडता है। जब तब ताने मारता है—तेरे हाथा म बरकत नही है—बडा आया बरकत वाला ! जैसे कि हर महीने पीपे के पीप, बोरे के बोरे लाकर धरता हो। एक चिट्ठी लिखवा दू भाई को तो छुट्टी लेकर अभी दौडा आयेगा फौज से मुझे लेन। जसे लखी को बिल्कुल बेवारसी समझ लिया है। पर क्या करू, भाई तो बहुत अच्छा ह—भाभी भी हो किसी कार की ? म-दी नीत वाली—दो धले सस्ती। और फिर य भी कौन सा भेजता है।' लखी की आँखों म आँसू आने हो वाले थे कि उस जज्ब करन पडे।

पडोसन बाहर ही स बातें करने लगी थी— हे लखी भैण क्या कर रही हो ? देख भैण दख—अब शहर म गरीब का गुजारा नी। देख भण दो रपय्य की चीना ! देख तो भण आज भी एक टेम की चा बणगी, बस।' लखी अनमनी ही रही। वह केवल हाँ हूँ और पुचर-पुचर करती रही। वैस भी इस पडोसन की आदत स वह वाकिफ हो चुकी है—अपनी-अपनी कहगी—सुनगी किसी की नही। सवेरे उस चीनी क लिए भईगी तो खूब चालिया—कहेगा कल ही ता लायी थी। क्या भण ? अच्छा भैण मर ता बरतन भाण्ड भी झूटे पड़े हैं। दूध भी ऐस ही पड़ा है। बिल्ली पी गयी तो कुडी भूखी रहेगो। सब कुछ यूँ ही बिखरा छोडकर चीना लन चली गयी थी पहल। खामखाँ साग भाजी म चले जात तो चीनी रह जाती। अच्छा भण।'

वह चली गयी तो लखी का बिल्ली पर और भी खीझ आयी ...

सब जगह घूमती है। फिर तो आज तुझे मेरे हाथा रब्ब भी नही बचा सकता। मैं पिलाऊँगी तुझे आज बच्चा के हिस्स का दूध।' लेकिन सोचत सोचत ही उसे लगा जैसे पडोसन के आने से उसका गुस्सा और दुख कुछ कम हुए हैं। वह यहाँ अकेली नही है। बिल्कुल उसी जसी और भी औरतें हैं। ठीक है तुझे मारूँगी नही तो टाँगें तेरी जरूर तोड दूगी। फिर तो इधर तू क्या परेट करती आयगी।' वह सोच ही रही थी कि उसका सोट वाला हाथ एकदम उठा और घर म घुम रही बिल्ली थोडा उछली। लेकिन वह अधिक उछल-कूद और बचाव नही कर सकी—वही दरवाजे मे ही पसर गयी। लखी ने काके को झटके स नीचे बिठाया और जाकर बिल्ली पर झुक गयी। सोटे से उसे उथल-पुथलकर देखा। वह पछतान लगी—इतना जोर से सोटा क्यू मारा? उसने पानी भी उसके मुह मे डाला पर बिल्ली तो ठण्डी हो चुकी थी। 'माया ये पाप भी मेरे हाथा होना था।' ज्यो ज्यो उसके मर जाने का विश्वास पक्का हो रहा था—उसका पछतावा भी बढ रहा था। आखिर उसने तसल्ली हो जाने के बाद एक लम्बी सांस भरी, 'वाहे गुरु की मर्जी' और बिल्ली को घसीटकर नाले मे धिका दिया।

लखी घर के झाडू पोचे और बरतन भाण्डो मे मन लगाने की कोशिश करने लगी। पानी से अच्छी तरह धोकर सोटा काके के आगे डाल दिया। वह उस लुढ़का-लुढ़काकर खेलने लगा। पर लखी का मन भारी होने लगा। उसे बार बार यह अन्देशा भी हो रहा था कहीं यह वो बिल्ली ना हो जो मेरे काके का दूध पीती थी और मुझे पिटवाती थी?'

□

हजूरसिंह और दोनो बच्चे आ गये। हजूरसिंह ने आते ही पग्ग और कमीज उतार दी। लखी ने लडके का पटका खोला और हजूरसिंह को पखा झलने लगी। वह चाहती थी कि हजूरसिंह को खुश होकर बताये कि अब हमारा काका कभी भूखा नही रहेगा। उसके हिस्स का दूध पीने वाली राम नाम सत्त हो गयी है। पर उसे मौका ही नही मिला। उसने ट्राजिस्टर उठा लिया और उसे कान से लगाकर स्टेशन घुमाने लगा। फिर जल्दी ही उसने पटकने की तरह ट्राजिस्टर एक ओर रखा और उबल पडा—'सारा दिन तुझे और कोइ काम नही? कि पडी पडी गाने ही सुनती रहती है? मै पूछता हू अभी दस दिन भी नही हुए सैल डलवाय और आज य मी सी भी नही कर रहे?' वह गालिया बकने लगा। लखी ने एक दिन यही बात हजूरसिंह स पूछी थी—इस रेडियो मे सल बहुत लगते हं? तो हजूरसिंह ने कहा था, 'ओछी पूजी खसम का खाय—दसी सट है सल तो खायगा ही।' पर अब लखी कुछ नहा बोली। वह जानती है कि बात मारपिटाई तक आ जायगी। हजूरसिंह बोलता रहा और वह उठकर चुपचाप उस कोन म जा बठी जहाँ रसोई

का जुगाड था। वह स्टोव जलाने लगी तो बनर ाम करने के लिए तेल अधिक निकल गया जिससे स्टोव की ढीवरी पर आग जले जा रही थी। हुजूरसिंह इतने महँगे तेल को यू जलता देख और भी नल गया तथा और भी अधिक जोर-जोर से गालियाँ बकने लगा।

हुजूरसिंह की गालियाँ लखी को कहीं गहरे तक चुभ रही थी।

वह एक कोने की ओर मुह किये चुपचाप बैठी पछता रही थी, 'उस बेचारी बेकसूर को ता खामखाँ मारा। असली बिल्ली तो जि दा है और बिना किसी भय के पूरे घर म धमाचोकडी मचा रही ह।'

शीशा

□ रमेश उपाध्याय

एक दिन ऐसा हुआ कि मेरे कमरे की खिडकी का एक शीशा टूट गया। उस दिन छुट्टी थी। बाहर मई की तेज धूप और लू। दोपहर को मैंने अपने हाथो बनाया हुआ भोजन किया माता पिता और अपनी प्रेमिका को पत्र लिखे और बिस्तर पर लेटकर एक पुस्तक पढ़ने लगा। खिडकी बन्द थी और उस पर नीला परदा पडा हुआ था। ऊपर पखा चल रहा था। अपनी फुरसत और कमरे की नीली ठडक बडा सुख दे रही थी। पता नही कब नीद आ गयी। मगर आख खुली तो देखा पखा बन्द है। मैं पसीने म भीगा पडा था और कमरे म उमस भरी हुई थी। बिजली पता नही कब चली गयी थी। समय देखा शाम होने वाली थी। सोचा हवा की गरमी और तेजी कम हो गयी होगी खिडकी खोल दू। मुझे क्या पता था कि हवा इतनी तेज होगी। मन्द मन्द आने के बजाय वह सपाटे से आयी और जब तक उसके थपेडे से बचने के लिए मैं खिडकी पुन बन्द करूँ उसने एक पल्ला मेरे हाथ से छुडाकर खोला और ऐसे भडाक से बन्द किया कि उस पल्ले का शीशा टूटकर कमरे के फश पर आ गिरा।

खिडकी तो मैंने इस खयाल से बन्द कर दी कि कही दूसरे पल्ले का शीशा भी न जाता रहे पर वह बन्द कहाँ हुई ? एक पल्ला तो खाली चौखटा रह गया था और क्षण भर पहले जो हवा बाहर ही सिर पटक रही थी अब मजे म मेरे कमरे म सपाटे भर रही थी। उसने मेज पर रखे हुए मेरे लिखे पत्र उडा दिये। दीवार पर टँगे कलेंडर को उलट दिया। छत म लटके पखे को हिलाने डुलाने लगी। मैंने खिडकी के परदे से उसे रोकने की कोशिश की लेकिन उसने परदे को मेरे हाथ से खीच लिया और उसे मेरे सिर के ऊपर विजय पताका की तरह फहराने लगी।

लाचार मैंने अपने पत्रो के पन्ने बटोरे और उन्हे दबाकर रख दिया। दीवार पर फडफडाते उलटे हुए कैलेंडर को उतारकर अलमारी म बन्द कर दिया। पर इससे क्या ? हवा आजादी से अपना काम कर रही थी। वह कमरे की तमाम चीजो

पर तो धूल डाल ही रही थी, मेरी आँखों में भी धूल झोंक रही थी। जरा सी देर में उसने मेरा साँस लेना दूभर कर दिया और मैंने मुंह खोला तो मेरे दाँतों में किरकिरी भर दी।

आँखें पोंछते हुए मैंने फर्श पर पड़े शीशे के टुकड़ों को देखा तो वे बोले, 'हम क्या कर सकते हैं ? चाहो तो हम अभी उठाकर फेंक दो, नहीं, कल फेंक देना।'

खिड़की के दूसरे पल्ले में लगे शीशे ने कहा, 'मेरा जोड़ीदार नहीं रहा, नहीं तो मैं इस हवा की बच्ची को देख लेता। तुम जानते हो हम दोनों ने मिलकर इससे भी तेज—यहाँ तक कि तूफानी अंधड़ों और घनघोर बारिशों का भी—सफलतापूर्वक सामना किया है। तुम्हारी इच्छा के बिना हमने आँधी पानी को कभी तुम्हारे कमरे में कदम नहीं रखने दिया। लेकिन अकेला मैं क्या कर सकता हूं ?'

'लेकिन वह तो तुम्हारा इतना पुराना, मजबूत और भरोसेमन्द साथी था। टूट कैसे गया ?'

'शीशा आखिर शीशा ही होता है, जरा सी ठेस लगने से टूट सकता है। उस बेचारे को तो इतना जोरदार धक्का लगा था।'

'खुद टूटा सो टूटा, कमबख्त मुझे भी मुसीबत में डाल गया।'

'उसे गाली क्यों देते हो ? तुम दूसरा शीशा लगवा लो।'

'इतना आसान है ? तुम मकान मालिक को नहीं जानते ?'

मकान-मालिक की याद आते ही मुझे डर लगने लगा। वह बड़ा बदमाश था। नल की टोंटी तभी से खराब थी जब मैंने कमरा किराये पर लिया था। कई बार उससे कहा कि वह टोंटी बदलवा दे, लेकिन उसने सुनी-अनसुनी कर दी। आखिर मैंने खुद ही बदलवा ली। अगले महीने किराया देते समय मैंने टोंटी पर हुए खर्च की बात की तो वह चिल्लाने लगा, टोंटी तुमने अपनी मर्जी से कैसे बदलवा ली ? बदलवाने की जरूरत ही नहीं थी। पुरानी टोंटी बिल्कुल ठीक थी। उसमें सिर्फ एक वाशर लगता और वह ठीक हो जाती। न ठीक होती बदलवानी ही पड़ती, तो भी वह तुम्हारा नहीं मेरा काम था। मकान-मालिक मैं हूँ या तुम ? तुम कौन होते हो मेरे मकान की चीजों से छेड़खानी करने वाले ? मैंने तुम्हें कमरा किराये पर देते समय ही कह दिया था कि अपनी इच्छा से तुम दीवार में एक कील भी नहीं ठोक सकते। जो चीज जहाँ है, जैसी है, वैसी ही रहनी चाहिए। कोई भी टूट-फूट या फेर-बदल हुई तो उसका हर्जा खर्चा तुमको देना होगा। लाओ टोंटी बदलवाने के दस रुपये और निकालो।'

मैंने मकान मालिक से तर्क करने की कोशिश की बरतने से चीजें घिसेंगी-टूटेंगी नहीं ? पुरानी होकर खराब और बेकार नहीं होंगी ? ऐसी चीजों की मरम्मत कराना या बदलवाना आपका काम है। टोंटी पर मेरा जो खर्च हुआ है,

उसे किराये मे से काट लेने का मुझे कानूनी अधिकार है। आप उस अधिकार को तो छीन ही रहे हैं उल्टे दस रुपये मुझसे और माँग रहे हैं।'

'आ कानून की दुम! एक शब्द भी और बोला तो तेरा थोबडा तोड दूगा। कितने दिन हो गये मेरे मकान मे रहते? अभी पता नही चला कि मैं कौन हू? सीधी तरह दस रुपये और निकाल, नही तो तेरा सामान सडक पर और तू अस्पताल मे नजर आयेगा।'

गनीमत हुई कि मकान के दूसरे किरायेदारो ने मकान मालिक की दहाड सुन ली और वे मेरी सहायता के लिए आ गये। लेकिन कैसी सहायता? उन्होने मकान मालिक से कहा, छोडिये मालिक! लडका है, विद्यार्थी है! अभी दुनियादारी नही जानता न! पहला मौका है, माफ कर दीजिये, आगे से कभी आपकी शान मे ऐसी गुस्ताखी नही करेगा। फिर उन्होने आँखो ही आँखो मे मुझसे कहा कि झटपट दस रुपये और देकर अपनी जान बचा लो। मकान मालिक दस रुपये अतिरिक्त लेकर टल गया तो उन्होने मुझे धीमी फुसफुसाहटो मे समझाया, 'तुम इसे जानते नही? बडा बदमाश है। हक इंसाफ की बात करने वाले किरायेदारो के साथ बडा बुरा सलूक करता है। मारपीट करता है। किराया बढा देता है। मकान से निकाल देता है। कोई पुलिस कचहरी मे जाता है तो उसके पीछे गुंडे लगा देता है। कइयो का खून करा चुका है। इसीलिए कोई किरायेदार उसके खिलाफ नही बोलता। तुम भी, जब यहा रहना है भीगी बिल्ली बनकर रहो।'

ये सारी बातें मेरे कमरे मे हुई थी और खिडकी का साबुत शीशा साक्षी था, इसलिए मकान-मालिक का नाम सुनकर वह भी भयभीत हो गया। बोला, तो फिर क्या करने की सोच रहे हो? देखो बादल आ रहे हैं। वर्षा हुई तो बौछारें तुम्हारी मेज और बिस्तर सब भिगो देगी। पढना लिखना तो दूर, तुम सो भी नही पाओगे।'

क्या करूँ, मकान मालिक की शरण मे ही जाऊगा। कहूँगा शीशा हवा से टूट गया है दूसरा लगवा दीजिये।'

'मान लो वह न लगवाये?'

'तो क्या उससे लडाई झगडा करूँ?'

'क्यो नही? मकान मालिक और किरायेदार मे तो झगडा होता ही आया है। तुम भी करो।'

'नही तो?'

'मरो।'

'तुम शीशे हो न समझ नही सकते। मकान मालिक बडा हरामी है। शीशा टूटने की बात कहूँगा तो कहेगा—तुमने तोडा है, तुम ही लगवाओ, ऊपर से दस-बीस रुपये और देते जाओ।'

'तुम कहना—शीशा मैंने नहीं, हवा ने तोड़ा है।'

वह मानेगा? उल्टा कहेगा—हवाएँ तो तब से चल रही है जब से मकान बना है। हवा से कोई शीशा नहीं टूटता।'

'मैं गवाही दूंगा। कहूंगा—मेरे जोड़ीदार को तुमने नहीं, हवा ने ही तोड़ा था।'

'तुम्हारी गवाही! हुँह! वह पूछेगा तुमसे—हवा तो तुमको भी लगी होगी तुम क्यों नहीं टूटे?'

शीशा सोच में पड़ गया। थोड़ी देर बाद भेद भरे स्वर में बोला 'एक काम करो। मेरे जोड़ीदार के टुकड़ों में से कोई बड़ा सा नुकीला टुकड़ा उठाकर रख लो। चाकू से भी तेज मार करेगा।'

यानी मैं मकान मालिक को मार डालूं?' मैंने घबराकर कहा, 'नहीं, नहीं, मैंने उस पर हमला किया तो वह चिल्लाकर पुलिस को बुला लेगा। फिर मुकदमा, जेल, फाँसी—न जाने क्या हो!'

शीशा चुपचाप हिकारत से मुझे घूरता रहा, जैसे कह रहा हो—तुम कायर हो!

मैंने उससे कहा, 'कायर नहीं, मैं अकेला हूँ। जैसे तुम। अकेले होकर तुम बेकार नहीं हो गए हो? अपनी जगह पर मजबूती से जमे हुए हो, लेकिन क्या हवा को अंदर आने से रोक पा रहे हो?'

शीशा कुछ बोला नहीं, पर उसका चेहरा स्याह हो गया। मैंने देखा आकाश में घटाएं घिर आयी हैं और बाहर पानी बरसने लगा है। अचानक कमरे में अँधेरा हो गया था, लेकिन गनीमत कि उसी समय बिजली आ गयी। मैंने बत्ती जला दी। पलटकर देखा तो खिड़की के खाली, बिना शीशे के पल्ले में से बौछारें अन्दर आ रही थीं। दूसरे पल्ले में लगा शीशा अपनी तरफ की बौछार को रोके हुए था, पर उस पर बरसती फिसलती बूँदें देख मुझे ऐसा लगा, जैसे वह रो रहा हो।

थोड़ी देर में बाहर अँधेरा घना हो गया और खिड़की का शीशा दर्पण की तरह मेरे कमरे की चीजों को प्रतिबिंबित करने लगा। मैंने उसमें अपनी शक्ल भी देखी। पानी की बूंदें मेरे चेहरे पर आँसुओं की तरह फिसल रही थीं।

चिशाव

□ हरिसुमन बिष्ट

लाल कुतिया बाजार से ठीक नाक की सीध में देखें तो दूर, रानीखेत के दक्षिण में पड़ता है *यह गाँव जहाँ 'ह्यून' (ठंड) की दोपहरी ढलने को आ गयी है।* लोग अपने अपने घरों में जा पहुंचे हैं। एक भय उन्हें कई दिनों से खाये जा रहा है। जबान पर एक ही वाक्य है—भूमिया देवता की 'केर' (पूजा) बिगड़ गयी है या फिर देवी के थान में लस्ट पस्ट हो गयी है। दस सयाने लोगों का कहना है—अपनी उम्र में उन्होंने ऐसी आंधी-अंधड़ कभी नहीं देखी। ऐसा अनर्थ कभी नहीं हुआ—अब तो उलटी गंगा बहने लगी है।

'खसियों' ने (कुमाऊँ में क्षत्रियों की एक विशेष जाति) भूमिया देवता पूजन *का आयोजन किया था—सच्चे मन से। पणज्यू' (पुजारी) के मन में कोई* असंतोष या फिर खोट आये तो उसके लिए दोषी कौन? दोषी तो पणज्यू हुए। भूमिया देवता को भी जरा सोच विचार करना चाहिए। वह निर्दोषों को भय क्यों दिखाता है? किसी को क्या मालूम किस थान में हलुवा' (परसाद) चढ़ता है—*किस थान में 'खुटि'* (बकरे की टांग) चढ़ती है तो *किस थान में सिरि (बकरे का* कटा हुआ सिर)। वे तो सब पणज्यू पर छोड़ देते हैं। हां पणज्यू से भी भूल हो ही जाती है वह भी तो इंसान हैं—इंसानों से ही तो गलती होती है। दरअसल पणज्यू ने भी 'जतरा' (पूजा गाथा) के समय भी कहा था देवी हम तो नर वानर हैं। कोई भूल चूक हो भी गयी तो दरग्या में नगा देना।'

बसंती काकी पर देवी अवतरित होती है। वह धूनी में लावा उगल रहे अंगारों के नीचे से राख अंजलि भर भरकर निकालकर दसों दिशाओं में फूंक मार कर उड़ा देती है। बाकी देवताओं के डंगरिये अलख जगाते हुए उछल पड़ते हैं नाचते हैं। और बसंती काकी का बदन सबसे अधिक पूरी शक्ति से तरंगायित हो उठता है।

ढोल दमऊ बजते रहते हैं। लोग बारी बारी से देवी के समक्ष आते हैं। बोल

वचन होते हैं कोई कहता है—भगवान यह तो ठीक नही रहती। कोई कहता, भगवान इतन साल हो गय विवाह किय मगर अभी तक उसकी गोद हरी नही हुई। यह कम का दण्ड है या फिर तेरी नजर मे तेरी कोई चिशाव तो नही है? है तो बता दे। देवी बारी बारी से सबके सवालो का जवाब दती ह। दु ख के निवारण का रास्ता सुझाती है और आखिर म भभूति के साथ पीठ ठोककर आशीर्वाद देती हुई कहती है 'नगरी म सब राजी रा खुशी रा स्यौनाई ।'

रमा को गाँव म अभी महीना भर भी नही हुआ था। गाँव मे जतरा की तैयारी पूरी हो चुकी थी। गाव के छोटे बडे थान म जा रहे थे। रमा की भी वहाँ जाने की इच्छा हुई। उसने जतरा कभी नही देखी थी। सहेलियो के साथ वह भी भूमिया के थान मे चली गयी। दिल्ली महानगर म उसने साक्षात देवी का अवतरित होना नही देखा था—अपने ईजा-बौज्यू (माता पिता) से सुना अवश्य था। मगर उसे विश्वास कभी नही हुआ। वह कहती, 'ऐसा भी सम्भव है क्या? लोग ग्रहा मे जाने की तयारी कर रहे हैं—जा भी रहे हैं। मगर वे ।

ईजा बौज्यू उसे फटकारते—एसा नही कहते रमा! देवता होते हैं अवश्य—यहाँ भी और वहाँ भी। तुझे नही मालूम देवी म कितनी बडी शक्ति होती है गाव मे फला व्यक्ति की शादी हो रही थी। तीन सौ से चार सौ के बीच बरातिये थे। ढोल दमऊ नगाडे के साज-बाज—'सरकार' (छोलिया नत्य) थ, 'निशाण' (धार्मिक ध्वजाएँ) थी और बरकिडा की 'हुडक्याणी' (नतकी) थी। बारात चल पडी घर से। लाल निशाण को उठाये एक आदमी पहुँच गया ओडम ढ' मे और सबसे आखिर म सफेद निशाण वाला आदमी खडा ही था घर के आँगन मे। इतनी बडी बारात का उदाहरण आज भी लोगो की जबान पर है, कैसी दैल फल की थी उस दिन। हाँ जब सबसे पीछे वाला आदमी सफेद निशाण लिए 'ओडम ढै' म पहुँचा तो लाल निशाण कहा पहुँची होगी? एकाएक ढोल दमऊ नगाडो की आवाज बन्द हो गयी। सबको बडा आश्चय हुआ। 'दास' (एक जाति विशेष जो पवतीय क्षेत्र म शुभ काय पर बाजा बजाते हैं) कितने ही 'आटू (बजाने की डडी) मारते। क्या मजाल कि ढोल दमऊ नगाडो के बोल निकलें। बारात ने अभी एक चौथाई पहाडी रास्ता तय नही किया था। सभी निराश हो गये। बारात की रौनक एकाएक फीकी पडने लगी। गुसैंदास को बडा गुस्सा आया। दासो मे दास गुसैं दास। चारो तरफ नाम था उसका। ऐसी अनहोनी उसके साथ कभी नही घटी थी। वह बहुत शर्मि दा हुआ। लाल निशाण रुक गयी। क्या हुआ गुसैं दा? क्या हुआ गुसैं का?' के स्वर गूज उठे। दस सयाण व्यक्ति कहन लगे, 'अरे गुसैंदास, यह बेइज्जती का सवाल है। तेरे हाथ मे हुनर होते हुए भी ।'

गुसैंदास क्या जवाब देता। वह मन ही मन जलने भुनने लगा। भिडो (सीढ़ीदार खेत की मेड) पर से 'बुकिल' (जगली घास) चुनी, किसी से माचिस माँगी

और आग जलाकर अपने गाजे-बाजे को तपाने लगा। मगर उन पर 'जणक न वणक' (जस-तस)। सबका ख्याल था कि गरम करने पर आवाज लौट आयगी।

लाल निशाण चल पडो।

गुसैंदास के आटू जोर जोर से नगाड़े पर पड़ने लगे। सारा प्रयास व्यर्थ गया। *गुसैंदास झुंझला उठा। आज उसके ठाकुरों का यह पहला शुभ काय था। कई दिन* पहले से ही उसे सावधान कर दिया था—साज बाज ठीक होने चाहिए। बारात को पटटी नयाल से पटटी सल्ट में जाना है। वरना सल्टिया के बीच बेइज्जती हो जायगी। उन्हें तो नयाल पटटी के लोगों को कहने सुनने का मौका चाहिए। हम तो व नयाल के 'किलमार' (मछली के बच्चे पकडने वाले) कहते हैं। देखा जाय तो सल्टियो को किले पकडने भी नहीं आते हैं। स्वर्ग गया बेचारा मोतीराम उपाध्याय, जिसने अंग्रेजों के साथ कई दिन तक टक्कर ली। जिसने अंग्रेजों को टैंटै *गोली से उड़ा दिया। नाम तो उस दिन कमा गया जिस दिन उसने मौका मिलते* ही खुमाड़ गांव की बीच सभा में अंग्रेजों को गोली से छलनी कर दिया था। आखिर में मोतीराम उपाध्याय पकड़ा गया था। उसी के बलबूते पर ख्याति अर्जित की सल्ट ने। बाकी तो घुरूचुपु हैं। उसी के नाम से सल्टियो के आज तक नाक भौं *चढ़ रहते हैं। अरड़ ऐसो जस मोतीराम उपाध्याय मरते मरते अपनी सारी शक्ति* इन सल्टिया का बांट गया हो—अपनी राख की खैरात बांट गया हो ।

बारात आगरी घर पर पहुँच गयी।

गुसैंदास को अपने ठाकुर के शब्द कचोटने लगे थे। उस दिन नाक ऊंची करके उसने कहा था 'चिन्ता न कीजिये ठाकुर साब, सारे बाजे नया मढवा रहा हूँ मुहम्मद से।' और हँसी का ठहाका लगाते हुए यह भी कहा था 'नगाडो की मढाई का खर्च भी तो उसी दिन वसूल पाना है।'

गुसैंदास को एक एक बात याद आती रही। गुस्सा भी पूरी तरह पैठ गया दिमाग में। आगरी घर के जोहड़ में डाल दिये नगाड़े और फिर चश्मे के स्वच्छ पानी से धोने लगा। सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। पानी की तेज धारा ने नगाड़े को भली भांति मलल कर दिया। गुसैंदास ने नगाड़े पर आटे दे मारे, फिर भी जस तस। बारातियों को निराशा डस गयी। चेहरे उतर गये—काले और फीके पड गये।

उम्मेदसिंह बूबू सबसे दाने सयाने आदमी थे। उन्हें भी आश्चर्य हुआ और बोले 'अरे गुसैंदास! सारे प्रयास विफल हो गये। अस्सी के आसपास मेरी भी उम्र हो चुकी, ऐसा आज तो कभी नहीं हुआ एक बात की शंका उत्पन्न हो रही है। भूल से कोई लस्ट पस्ट तो नहीं हो गयी—यह नगाड़ा भी तो देवी के थान में *चढावा आया था।'*

'मुझे भी ऐसी ही शंका हो रही है।' अपने मन में गहरा विश्वास जमाते हुए

गुसदास ने कहा, 'सवा रुपया दड का निकाल दीजिये ठाकुर कोई भूल चूक और लस्ट पस्ट हो सकती है।'

'अच्छा तेरा भी यही सोचना है तो भूमिया दवता के नाम पर यह सवा रुपया।' उम्मदसिह बूबू ने एक तीसर व्यक्ति को भूल चूक, लस्ट-पस्ट के लिए दड स्वरूप सवा रुपया थमा दिया। गुसैदास न भी क्षमा याचना की और नगाडे पर आटू दे मारा। आवाज लौट आयी। सबके चेहरे खिलखिला उठे। तुम कहती हो देवता जसी कोइ शक्ति नही है। सभी अपने अपने स्थानो म हैं—उनकी अपनी मान्यता है।

रमा को अपने ईजा बौज्यू का कहा एक एक शब्द याद आने लगा, देवी के प्रति उसकी एक पल को श्रद्धा उमडती तो उसी क्षण यकीन चटक भी जाता। बोल वचन करती देवी क समक्ष दो महिलाएँ और तीन बच्चे उससे पहले खडे थे। बारी बारी स उ होने भभूति लगायी। व चलते बने।

अब बारी थी रमा की—हाथ जोडे मन म कुछ सवाल लिए। देवी उसके सवालो का क्या जवाब देगी ? जवाब देगी भी या नही ? पहला सवाल उस कौन-सा पूछना होगा ! वह अपन ही सवाला की उधडबुन म फस गयी। उसके सवाल साधारण नही बल्कि अब तक महिलाओ पुरुषो, युवक युवतियों द्वारा पूछे गये प्रश्नो से भिन्न थे। उसे घबराहट सी होन लगी। महानगर की जि दगी से हारकर वह गाँव लौट आयी थी। सुबह शाम की भाग दौड, बसो कारो एव स्कूटरो की भीड भाड खीचातानी स ऊब चुकी थी। वजह यही नही थी बल्कि आज तक वह किसी की बन नही सकी और न वह किसी का अपना कह सकती थी। एक तरफ ईजा बौज्यू की पाबन्दियाँ लोकाचार और दूसरी तरफ महानगर म सास बहू, देवर देवरानियो की काली सुर्खी खबरो से भरे अखबारो ने उसे बुरी तरह कचोट डाला था। उसके ईजा-बौज्यू भी हारकर कइ बार कह चुके थे 'इस महानगर मे सुयोग्य लडका ढूँढ़ पाना मुश्किल है—वैसे कुडली माँगने वाले, आम की डाल हिलाने वालो की कमी नही होती।'

रोज घर म हडबडी मची रहती थी। बौज्यू आगन्तुको के साथ गप्पें लगाते तो ईजा बठे बैठे ऑडर फरमाती 'रमा ! देख तो कौन आये हैं ? पानी तो पिला।'

वह झट समझ जाती कि अब उस किसी होटल के वेटर की तरह बाहर के कमरे म लगी सन्टूल टेबल पर पानी पहुचाना होगा। फिर इजा उनस पूछकर बतायेंगी—क्या पीना है—ठण्डा चाय या काफी।

रमा पानी लेकर जाती तो ईजा का स्वर गूज उठता, 'अब आधा आधा प्याला चाय बनाना बेटी !'

'अच्छा ईजा' कहकर रमा ज्यो ही इजा की तरफ देखती, आगन्तुकों की सवालिया नजरें, सदेह भरी नजरें टूट पडती। उसकी आवाज पर गौर होने लगता

—स्वर मीठा है न ? नयन नक्श तो ठीक हैं न ? कद और गात म भी ठीक ही रहेगी और रग, बिलकुल साफ है ।

रमा किचन म लौट आती ।

ईजा बोज्यू और आगन्तुको के बीच बातो का सिलसिला चल पडता। 'ग्रेजुएशन तो कर ली है न बिटिया न ? अब आग क्या कराने का इरादा है—नौकरी या फिर ।'

नौकरी के लिए कोशिश कर रही है। ग्रेजुएशन म नम्बर तो अच्छे हैं—बक-बैंक का फाम भी भरा है।' रमा की ईजा जवाब देती।

कब भरा है फाम ?' यह आग तुक का अगला प्रश्न होता।

'कुछ रोज पहले ही निकले थे फाम ।'

'महनत करने पर ही होता है सब कुछ ।' आग तुक को बातचीत का विषय बदलन म देर नही लगती। एक बात पूरी तरह परिणाम पर नही पहुँचती कि उससे पहल दूसरी बात का सिलसिला प्रारम्भ हो जाता।

रमा चाय बनाकर ले आती।

चाय की चुस्कियाँ लते लेते आग तुक की सवालिया नजरें जरा देर थम जाती और फिर उसे पूछा जाता, 'क्या नाम है ?'

रमा।'

'इसी साल ग्रेजुएशन की है क्या ?'

'हाँ' रमा का एक टूक जवाब होता।

किस कालज से ?'

रमा चट से शरमाती हुई कॉलेज का नाम बता देती। इधर उधर के बीसियो सवाल पूछे जात और उमे कुछ न कुछ जवाब देना ही होता था।

रमा दु खी हो चुकी थी—माडल बनकर पेश होने स किसी होटल की वेटर की जिन्दगी से। अन्त मे रमा किचन मे लौट आती स्वय स सवाल करती, कैसी हूँ मैं ? कसा है मेरा रग ? कैस हैं मेरे नयन-नक्श और कद क्द्दावर ?'

उस समय रमा को कोई जवाब नही मिलता और न ईजा बोज्यू को।

कुछ दिनो तक उत्तर की प्रतीक्षा रहती। जवाब आने म हफ्ता, दस दिन भी लग जाते, 'लडकी सु दर है लडके को भी पस द है लेकिन लेकिन लडके का कहना है—लडकी कही काम वाम नही करती।'

और कही पर नौकरी का सवाल नही उठना तो, शा-ी पर खच और लेन-देन की बातें आडे आ जाती। रमा ने कई बार तय कर लिया था कि अब उसे किसी चलते फिरते लडके का हाथ थाम लेना चाहिए। लेकिन उसी समय वह घबरा जाती—जब वह कालज मे पढती थी तभी उसने एक अनुभव प्राप्त किया था। कालेज आत जात समय उस एक हृष्ट-पुष्ट युवक मिलता था। रानेश नाम

बनाया था उसने। एक दिन उसन रमा से भी नाम व घर का पता पूछा, जबकि नाम वह किसी से मालूम कर चुका था। फिर भी वह रमा की जबान स नाम की पुष्टि करवाना चाहता था। रमा से बातें करने की उसकी हरदम कोशिश रहती।

हाँ, दो-तीन दिन तक वह रास्ते मे या कालेज के बाहर नही दीख पडता, तो रमा को भी उसकी गैर मौजूदगी खलने लगती।

यह सिलसिला अधिक दिनो तक नही चला।

एक बार हफ्ते भर तक राकेश नही दीखा तो रमा उसे भूल सी गयी। आठवें दिन रमा ने एक दैनिक अखबार मे पढ़ा सूरज कुमार उर्फ राकेश, दो नेपाली लडकियो का सौदा करते रगे हाथ पकडा गया।' सूरज कुमार उर्फ राकेश की फोटो भी छपी थी।

रमा को पहचानने मे देर नही लगी। वह कँपकँपा उठी थी। उसे अपन जीवन के बारे म सबसे पहली बार सोचने का मौका मिला था। लेकिन आज वह दूसरी बार अपने विषय म सोच रही थी—क्या आज देवी उसका भविष्य बतायगी! उसके दु ख का निवारण करेगी।

देवी के चरणो मे वह झुकी।

भूमिया देवता के डङरिया ने धूनी की आग म फावडि घुमाते हुए अलख जगायी। आग की लपटे तेज हो गयी। डङरिये न बडी बडी सुर्ख आँखो से उसकी ओर देखकर पुन अलख जगायी और धूनी के चक्कर काटने लगा।

'अनर्थ हो जायेगा।' भूमिया देवता का डङरिया बोला।

कसा अनर्थ भगवान? पणज्यू ने सवाल किया।

'इस सवाल का जवाब मुझस नही, देवी स पूछो।'

पणज्यू नतमस्तक होकर बोले, 'इस गाँव से देवी देवता चल गय हैं जो कि अनर्थ होगा।'

देवी से अभी पूछत हैं।

'अनर्थ हो जायेगा इस नगरी म। स्योनाई को हर कदम सोच समझकर रखना होगा—यह मेरी नगरी है 'छलछलाट वलवलाट' (चचलता) नही करना होगा यहाँ। देवी ने कहा।

'सन्मार्ग पर चलने की बुद्धि भी तो तुम ही दोगी, देवी माँ!' पणज्यू ने कहा।

'मेरी तरफ से राजी रहो, खुश रहो—सारी नगरी वाले।'

'हमे तो यही बोल-वचन चाहिए देवी!' सभी ने बैठे हुए ही अपने-अपने स्थानो स देवी को हाथ जोडे और रमा, वह तो हाथ जोडे हुए बैठी थी। देवी भभूति लगाती हुई बोली, 'अघोर म नही डालना, नही तो नही तो स्योनाई एक का देखना दस का सुनना ठीक नही होता, स्योनाई बदनाम हो जायेगी, मेरी

नगरी बदनाम हो जायेगी। अच्छा राजी रा, खुशी रा ।'

रमा उठकर चली आयी।

दवी की बातो को उसन गहरायी स सोचा। लकिन वह यह तय नही कर सकी कि य शब्द बसन्ती काकी के थे या फिर दवी क। फिर एसा कहने का क्या तुक ! यह कोई दवी नही, बसन्ती काकी का अपना ताना-बाना बुना हुआ है। मैं इसम फँसन वाली नही, मैं जा सवाल पूछना चाहती थी वह तो उसन पूछने का मौका ही नही दिया। उसकी शक्ति का पता तो तब चलता जब वह मेरे सवाल का जवाब देती। यह तो एक जाल है—स्टंट है। ईजा-बोज्यू की बातों से उसक मन म जो एक विश्वास सा बन रहा था वह चरमरान लगा।

भूमिया थान स घर वापस आयी।

ईजा-बोज्यू को भी बताया। इन पवतिया को अक्कल नही होती। अपनी अक्कल पर पानी फिराकर उस बसन्ती काकी क कहे पर चलते हैं। सिर दद, कमर दद या फिर मौसम के बदलने पर छीक भी आती है तो उसी के पीछे-पीछे मारे फिरत हैं। जैस भूत पिशाच, छल-बल से लेकर टी० बी० और कैंसर जैसी बीमारियो की दवा वह चुटकी भर राख हो।'

'भभूति तो शीघ्र स्वस्थ होन की कामना क लिए होती है। उसके बाद ही तो दवाइया दी जाती हैं बेटी !' रमा को समझाया ईजा-बोज्यू ने।

लेकिन रमा क लिए सब पाखण्ड था। वह चिढ़कर बाली, बसन्ती काकी के य दाँव पेच उसके कदमो म झुकने के लिए मजबूर कर देते हैं और वे डडरिय थान म 'बोकिया' चढता है एक। उसक लिए एक कहता है, 'सिरि' मेरे हिस्से आती है क्योंकि मैं भूमिया का डडरिया हू और दूसरा कहता है खुटि मेरे हिस्से आती है क्योकि वह भरव का डडरिया है और उनम पणज्यू सबस आगे रहत हैं—कहते हैं, 'पिछली एक 'खुटि मेरे हिस्स आती है—जरा अच्छी तरह काटना उसे।'

रमा बौखला उठी। दिल्ली म जब भी अपने ईजा बोज्यू से गाव के देवी देवताओ की बाते सुनती तो उसके मन म उनकी परीक्षा लेने की प्रबल इच्छा होती थी। लेकिन इजा बोज्यू के कई तरह क भय दिखाने पर वह चुप हो जाती थी। आज उसन परीक्षा लेने का मन बना लिया।

दिन भर रमा बसन्ती काकी की राह देखती है।

उसका इस घर म आना जाना काफी था। मौका मिलते ही वह किसी भी समय आ धमकती थी।

रमा बिस्तर मे पसरन तक उस पर भी आँखों म नीद आन तक बसन्ती काकी की प्रतीक्षा करती रही। वह नही आयी।

सुबह हुई। चौथर म घाम घुटनो के बल चलकर बढ़ रहा था।

बसन्ती काकी आ पहुँची।

'कल शाम क्यो नही आयी काकी !' रमा न पूछा।

'अरी तू अभी उठी नही, दिल्लीवाज है न ! दिल्ली वाले कहाँ जल्दी उठते हैं। उन्हें तो 'टी' चाहिए बिस्तर म।' कहती बसन्ती काकी रमा के नजदीक बठ गयी।

रमा ने बिस्तर छोडा, उठी—हाथ मुह धोए, चूल्हे पर गयी, चाय का पानी रखा और झट से चाय बनाकर ले आयी।

बसन्ती काकी ने चाय का घूट भरा।

रमा खिलखिलाकर हँस पडी।

'क्या हुआ, हँम क्या रही है ?' बसन्ती काकी ने पूछा।

'कुछ नही, यो ही एक बात याद आ गयी।' कहकर रमा ने बात को तिलाजलि दे दी और स्वय भी चाय पीने लगी।

'मुझसे कब तक छुपाओगी।' गम्भीर होकर बसन्ती काकी न कहा और चाय सुडक डाली।

'अब जाती हूँ, शाम को आऊँगी।' कहकर बसन्ती काकी उठी और वापस भी चली गयी।

'कैसा उल्लू बनाया है बसन्ती काकी ने सबको। ढोगी। और ये लोग भी कितने अधविश्वासी हैं। यदि उस पर देवी अवतरित होती तो उसे अभी पता चल जाना चाहिए था। मैंने उसे अपने हाथो बनायी चाय पिला दी। उस पता नही चला। मैं तो आज रजस्वला हूँ। यदि उस बता देती तो पूरा घर सिर पर उठा लेती। अब मैं समझ गयी हू वह बकरे के लिए ही नाटक खेला जाता है। मैं सभी से कहूगी, 'क्यो व्यथ पमा और समय बरबाद करते हो— छोड दो यह सब ढकोसला —दवी गढदेवी कोई भी अवतरित नही होती, मैंने आज परीक्षा ले ली है।' रमा ने स्वय स कहा और जार से हमी। एकाएक उसका चेहरा उतर गया। वे लोग पूछेंगे कि क्या परीक्षा ली, तो ? उनसे कैसे कहूँगी कि इस मैंने अपने हाथो बनायी चाय पिलायी है। वे मुझे पापी कहगे। वे मुझे माफ नही करेंगे ? वह घबरा उठी। गाँव की अनब्याही लडकी मैं बदनाम हो जाऊँगी। बदनामी का दोष मरे माथे मढ दिया जायगा। ईजा-बोज्यू को इस पर ताने कसे जायेंगे। मैं उन्ह समझाऊँगी भी तो मेरी एक न सुनेंगे। ईजा बोज्यू की नही सुनेंगे कि रजस्वला होने का शादी से कोई मतलब नही है। यह तो उम्र के बढ़ने के साथ होता है। गाँव का छोटा बडा इस बात को नही मानेगा। रमा के मन मे कई सदेह उठने लगे। वह दहल सी गयी। ईजा बोज्यू ने इस बीच बाहर से आवाज दी तो वह चुपचाप बठी रही।

ईजा अन्दर चली आयी।

रमा को आवाज दी। वह फिर भी गुमसुम बैठी रही। ईजा ने देखा, ठण्ड की सुबह होन पर भी वह पसीन म नहा रही है। हाथ-पाँव मे तपिश भी नही है।

वह घबरा गयी। आँगन मे हल का फाल ठीक कर रहे अमरी को आवाज देकर बुलाया। वह इस गाव के भूमिया देवता का डङरिया था। उसने रमा को देखा और बोला *छल की शिकायत हो सकती है—मैं भभूति लगा देता हूँ।' कहते उसने* भभूति टिकाने को हाथ बढाया तो रमा ने उसे ऐसा करने से रोका। एकाएक अमरी अलख जगाते हुए बोला देवी की डङरिया को बुलाओ, वही स्यौनाई की करतूतो का दूध का दूध पानी का पानी करेगी।'

रमा और ज्यादा घबरा गयी।

देवी की डङरिया तो बसन्ती काकी ही थी—वह तो अभी अभी थोडी देर पहले यहा से गयी थी। उसके ईजा बौज्यू घबरा गये। अब उसे बुलाने जाय कौन ? उन्हे एक भय खाने लगा। अकेले जाने की हिम्मत न हुई। पूरा घर घूमता प्रतीत होने लगा। उसके ईजा बौज्यू क्षमा याचना करते हुए बोले 'भगवान, यह सब कैसा अनर्थ हो रहा है ? देवी के डङरिय को बुलाने जायगा कौन ? वह भी घर पर मिलेगी या नही।'

इस पर अमरी उछल पडा, 'तो सौकार ! (श्रेष्ठ पुरुष) तू भी मेरी परीक्षा लेगा—ठीक है मैं अभी उसे बुला लाऊँगा।'

अमरी ने एक बार फिर पूरी शक्ति से अलख जगायी। भभूति चारो दिशाओ मे फूकी। रमा के ईजा बौज्यू लाचारी मे सिर झुकाये गिडगिडाने लगे आप क्रोधित न होएँ भगवान, मैं देवी के डङरिय को बुलाकर ले आती हू।' रमा की इजा ने कहा।

'अरी तू कहा जायगी औरत जात होकर, मैं बुलाकर ले आता हू।' रमा के बौज्यू ने कहा।

नही बौज्यू नही। उसे बुलाकर न लाओ। मुझे कुछ नही होगा।' रमा ने कहा। लेकिन उसके बौज्यू ने उसकी बात न मानी और सहमे कदमो से बाहर निकल गये।

रमा ने अपनी ठौर पर उठने का प्रयास किया तो अमरी ने ढेर सारी राख उसके चेहरे पर फूँक दी। वह चीख पड़ी। उसके चीखने के साथ अमरी ने अलख जगायी।

पास पडोस के लोग इकट्ठे होने लगे। पूरे गाँव मे बात बिजली की भाँति फैल गयी।

रमा के बौज्यू बसन्ती काकी को बुलाकर ले आये। घर मे प्रवेश करते वह चीखी। अमरी भी जोर से अलख जगाता उछल पडा। जवान लडकी की दशा देखकर ईजा बौज्यू के मुख मे सावन झूम गया।

हम क्षमा करो देवी। अभी बच्ची है—इन सब बातो को नहीं समझती।' रमा की इजा ने विनती की।

'स्योनाई, मैंने इस अपन दरबार म भी सावधान किया था कि [illegible] बलबलाट करना ठीक नही—मगर यह मानती नही। मिल गया है [illegible]' कहती बसती काकी रमा पर टूट पडी।

'नही, नही।' के प्रतिरोध म रमा चीखकर लुढक गयी—बेहोश।

'इसे जल्दी ठीक कर दीजिये देवी!' रमा के ईजा बौज्यू न कहा।

'मैं तो इस ठीक कर दूगी लेकिन मेर साण वाण कैसे चुप होगे। उनका खाना पीना दे दे सौकार महीने भर म। नही तो वे अपना छल बल दिखायेंगे।'

मैं अपन ही घर पर उतरा दूगा देवी! तुम सभी को शात कर दीजिये।'

'अच्छा!' कहता देवी ने भभूति भूमिया के डडरिया की तरफ फूकी।

वह शात हो गया यानि अमरी।

फिर देवी ने बेहोश पडी रमा की तरफ भभूति फूकी। 'जब राजी रहो खुशी रहो सौकार!' कहकर बसती काकी बाहर चली गयी। उसके पीछे-पीछे अमरी भी।

घर पर इकट्ठी भीड छँटने लगी।

घर मे एकाल पसर गया। बेहोश पडी रमा को एकात म छोड दिया गया। सिफ उसकी ईजा हवा झलती रही। अब उसके हाथ भी दुखने लगे थे। धीरे धीरे रमा के चेहरे का तेज लौटने लगा—पलकें हिलन लगी। सूखे कण्ठ म थूक निगलन का स्वर भी निकला। उसकी स्थिति मे बरकत देखकर ईजा का कलेजा अपनी ठौर पर लौट आया—वह धीरे से बोली रमा अब जी तो ठीक है न ?'

'हाँ!' रमा न सिर हिलाया। ईजा ने पानी की बूदें उसके मुह मे डालते हुए कुछ कहना चाहा लेकिन एकाएक आसू छलछला आये। वह अस्पष्ट सी बुदबुदायी।

'क्या हुआ माँ! तुम वक्त बेवक्त रोती रहती हो। यहाँ भी और शहर मे भी।' रमा ने भारी स्वर म कहा मैं तो चाय पीकर कुछ सोचने लगी थी कि देवी के थान म बसती काकी न मुझे वही कहा जैसा कि मैं उसस हँसी मजाक म कहती थी। उस यकीन आ गया मेरी बात का। तब मुझे लगा—वह मुझे डरा रही है। भला एसा देवी पर म क्यो विश्वास करूँ।'

ऐसा अपशब्द देवी के लिए नही कहत बेटी! देवी नही होती तो तू अभी यो नही बोलती।' ईजा ने सिसकत हुए कहा, तू ऐसा क्यों बोलती है। मेरे दिल ने तो ठौर छोड दी थी।'

मैं ठीक कह रही हूँ माँ वह देवी नही है। मैं तो कल की बात सुनकर अफसोस कर रही थी और आज वह देवी मेर मन को बात नही पढ़ पायी। मगर कैसे? मैंने कुछ उसे बताया होता तब न? फिर वह किस बात की चेतावनी दती मुझे, और वह घर पर आयी भी तब जब उस बुलाने गय।'

'तभी तो वह समय पर यहाँ आ गयी। देवी की शक्ति न होती तो मैं कहीं की न रहती।'

'ऐसी क्या बात हुई। तुम क्या सोचती हो कि मुझे कुछ नहीं मालूम। बसती काकी यहाँ आयी। उसने मेरे बालों की गूथ पकडी। मेरे ना-ना करने पर भी मेरी गूथ नोच ली। मेरी एक नहीं सुनी। मैं घबरा गयी। फिर मुझे याद नहीं कि क्या हुआ? सब भले के लिए ही होता है—वह मुझे जीवित नहीं छोडती।'

'देवी तो सभी की माँ है—एक माँ अपनी बेटा की जान क्यों लेगी? ऐसा अविश्वास नहीं करते।' ईजा न समझाया।

'यह सब झूठ है—धोखा है माँ! वह देवी नहीं है। मेरी बात पर यकीन करो माँ। वह अमरी भी ढोंगी है। उसने चीखकर मेरे गाल पर तमाचा मारने से पहले राख आखो म न फूकी होती तो मैं उसका हाथ मरोड़कर रख देती—मैं तो आँखें मलती रही। मैं पूरे गाँव के लोगो को चीख चीखकर बताऊँगी यह सब धोखा है फरेब है। बसती काकी पर देवी अवतरित नहीं होती। वह ढोंग करती है। अमरी ढोंगी है—बकरा खाने के लिए उनका यह जाल है। कोई भी देवी देवता बकरा नहीं खाते। उनके लिए जीव जन्तु सब बराबर हैं। फिर वह देवी बकरे की बलि क्या लेगी भला? यह अपराध है। ऐसे लोगों को दण्ड मिलना चाहिए।'

रमा क्रोधित हो उठ बैठी थी। माँ के समझाने पर भी उसका चित्त शात न हुआ। उसके खिलाफ आवाज उठाती भी लेकिन गाव के अलिखित सविधान म न तो कोई अदालत थी और न विरोध करने की आवाज ही बल्कि गाँव के हर व्यक्ति की कोशिश थी कि रमा का सवाल ही अनुत्तरित क्या सवाल करने का हक ही न रहे।

□□



देश निर्मोही

जन्म 4 अप्रैल, 1959 (पाई, कुरुक्षेत्र)

शिक्षा एम० काम०, डी० पी० एम० एण्ड आई० आर०, एम० ए० (हिन्दी)

अनुवाद पजाबी के चर्चित व्यग्यकार गुरदेव चौहान के व्यग्यो का हिन्दी मे अनुवाद पुस्तक 'टेढ़ी लकीर'

विभिन्न पत्र पत्रिकाओ मे अनेक रचनाएँ प्रकाशित एव चर्चित।

कविता सग्रह 'अँधेरे को बुनता हुआ' प्रकाशन की तैयारी मे।

विशेष जन साहित्य की त्रैमासिक पत्रिका 'पल प्रतिपल' का सम्पादन।

सम्प्रति रक्षा लेखा नियन्त्रक (पश्चिमी कमान) चण्डीगढ़ मे लेखा परीक्षक।

सम्पर्क 372/सेक्टर 17, पचकूला-134 109 (हरियाणा)